शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 11 अंक : 1 1 अगस्त 2018

(श्रावण, विक्रम संवत् 2075)

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
सन्तोष पाण्डेय

❖

सह सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ❑ भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल ❑ नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी : 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/– वार्षिक शुल्क 200/–
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

मोनोकल्चर के पोषक स्कूल ❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

वर्तमान विद्यालयों व महाविद्यालयों में एक समान पाठ्यचर्या व एक समान शिक्षण विधियों से एक-सा परिणाम प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। यह मोनोकल्चर कृषि के समान ही है। मोनोकल्चर शिक्षा से थोक इंजिनियर व एमबीए उत्पन्न हो रहे हैं। बाजार में उनका खरीददार नहीं मिल रहा है। सहायक कर्मचारी व अन्य पद पाने के लिए घोर संघर्ष करना पड़ रहा है। इन इंजिनियर्स व एमबीए की मोनोकल्चर कृषि पर खर्च धन बेकार जा रहा है। उपाधिधारी बेरोजगारों की इस भीड़ से निपटने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। इनको नियोजित करने का प्रयास सरकार व समाज के लिए बड़ी चुनौती बना हुआ है।

6

अनुक्रम

4. जिज्ञासु प्रवृत्ति, मौलिक विचार बढ़ाने वाली हो शिक्षा – सन्तोष पाण्डेय
8. जैसा शिक्षक वैसी शिक्षा – वासुदेव प्रजापति
10. जिज्ञासा अभ्युदय व नैसर्गिक गुणों को प्रोत्साहन – प्रो. मधुर मोहन रंगा
12. विद्यालय में कैद बचपन – सुमनबाला
14. किस दिशा में जाएँ अभिभावक – डॉ. ऋतु सारस्वत
16. श्री अरविन्द : राष्ट्रीय शिक्षा की अवधारणा – डॉ. रेखा यादव
18. गिजुभाई का शिक्षा दर्शन – प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
21. बचपन की बुनियाद का दुश्मन कौन? – डॉ. रूपेश कुमार चौहान
30. उच्च शिक्षा के समक्ष बड़ा संकट – प्रो. गिरिश्वर मिश्र
32. विश्वविद्यालयों में फिसलता विज्ञान शोध – डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
34. जल रूपी अमृत को बचाना होगा – डॉ. अनीता मोदी
36. कृषि शिक्षा एवं जैव विविधता – डॉ. रेखा भट्ट
40. अवतार कथा-1 (कुटुम्ब प्रबोधन-पंचम अध्याय) – हनुमान सिंह राठौड़
44. गतिविधि

Concept and need of Sanskar

❑ Dr. T. S. Girishkumar

Indeed, education ideally is the same method and mechanism of civilising people. It ought to begin with knowledge made available to young minds, then to Sanskriti and to Dharma. Fortunately, humans are gifted with one of the greatest gifts of nature, that is the ability to articulate sound as desired. This paved way to creation of languages, and once languages found written forms, they became records of knowledge. Once such records came into existence, it had become easy for one to travel through knowledge tradition of many generations.

28

जिज्ञासु प्रवृत्ति व मौलिक विचार बढ़ाने वाली हो शिक्षा

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

संपादकीय

स्वामी विवेकानन्द ने व्यक्ति में अन्तर्निहित क्षमताओं और सम्भावनाओं को वास्तविकता में बदलने व पूर्णता प्रदान करने वाली प्रक्रिया को ही शिक्षा कहा है। शिक्षा के दो महत्त्वपूर्ण पहलू हैं– पहला–व्यक्ति में जो क्षमताएँ एवं सम्भावनाएँ हैं, उन्हें वास्तविकता में बदल उन्हें पूर्णतः पुष्पित व पल्लवित करे। दूसरा–शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को जिज्ञासु बनाये व उसकी जिज्ञासा को शांत करे तथा मौलिक विचार व समझ की क्षमता को बढ़ाये। इसके साथ ही शिक्षा मनुष्य के श्रेष्ठ चरित्र निर्माण करने वाली होनी चाहिये। इन गुणों से युक्त होने पर व्यक्तित्त्व निखरता है व पूर्णता प्राप्त करता है। दूसरी ओर शिक्षा संस्कृति के वाहक के रूप में व्यक्ति को समाज का उपयोगी सदस्य बनाने का कार्य भी करती है। शिक्षा, व्यक्ति को देश व समाज के आदर्शों, व्यवहार के प्रतिमानों को उसकी कार्य–संस्कृति में समाहित करती है। सामाजिक व पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह योग्य बनाती है व राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति में योग देने योग्य बनाती है। इन दोनों पहलुओं पर ध्यान देने वाली शिक्षा व्यवस्था न केवल व्यक्ति के व्यक्तिगत उत्थान में योग देती है, वरन् देश व समाज के सामूहिक हितों को भी साधती है। यह शिक्षा का सैद्धान्तिक पक्ष है। इन्हें व्यावहारिक रूप में परिणत करने वाला समाज ही सांस्कृतिक व नैतिक रूप से सुदृढ़, प्रगतिशील व सर्वगुण सम्पन्न समाज होता है। भारत की गुरुकुल प्रधान शिक्षा व्यवस्था इस उद्देश्य को प्राप्त करने में समर्थ होने के कारण ही भारत सुसंस्कृत, सम्पन्न, वैभवपूर्ण, आत्मनिर्भर स्वाभिमानी राष्ट्र बन सका व विश्व गुरु का गौरव प्राप्त कर सका। समय के झंझावातों में यह व्यवस्था ध्वस्त हो गयी। आज की शिक्षा व्यवस्था में पश्चिमी सोच, भौतिकतावादी दृष्टिकोण, सम्पूर्ण प्रकृति का मानव हित में दोहन का विचार मुख्य आधार बन चुका है। आज वैयक्तिक व सामाजिक–आर्थिक विकास का मानदण्ड भी पश्चिमी सोच के अनुकूल बन चुका है। इससे शिक्षा व शिक्षा व्यवस्था पर अनेक प्रश्न चिह्न लग रहे हैं।

आज भारत की शिक्षा व्यवस्था के प्रति सर्वाधिक असंतुष्टि का भाव विद्यमान है। जनसाधारण की सोच है कि यह न तो व्यक्तिगत उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है, और न ही सामाजिक राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो पा रही है। आर्थिक विकास की चाह व व्यक्तिगत सफलता की आकांक्षा ने शिक्षा के प्रचार व प्रसार में भारी योग दिया है। परन्तु इस विस्तार में शिक्षा के उद्देश्य व गुणवत्ता समाप्त होती चली गयी है। शिक्षा रोजगार की प्राप्ति से घनिष्ठ रूप से जुड़ गई है। रोजगार प्राप्ति व आगे की उन्नति के लिये अधिक से अधिक रोजगारपरक डिग्रियों की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य बन गई है। समाज ने शिक्षा के महत्त्व को पहचाना है। इससे शिक्षा के प्रसार की गति तीव्र हुई है। परन्तु इस प्रकार की शिक्षा का विस्तार शिक्षा के मूल दो उद्देश्यों में से किसी की भी प्राप्ति में सफल नहीं है। वास्तव में आज स्कूल, शिक्षा का पर्याय बन गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन निर्माण की अधिकतम अवधि प्री–नर्सरी से स्नातकोत्तर तक की

आज भारत की शिक्षा व्यवस्था के प्रति सर्वाधिक असंतुष्टि का भाव विद्यमान है। जनसाधारण की सोच है कि यह न तो व्यक्तिगत उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है, और न ही सामाजिक राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो पा रही है। आर्थिक विकास की चाह व व्यक्तिगत सफलता की आकांक्षा ने शिक्षा के प्रचार व प्रसार में भारी योग दिया है। परन्तु इस विस्तार में शिक्षा के उद्देश्य व गुणवत्ता समाप्त होती चली गयी है। शिक्षा रोजगार की प्राप्ति से घनिष्ठ रूप से जुड़ गई है। रोजगार प्राप्ति व आगे की उन्नति के लिये अधिक से अधिक रोजगारपरक डिग्रियों की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य बन गई है। समाज ने शिक्षा के महत्त्व को पहचाना है। इससे शिक्षा के प्रसार की गति तीव्र हुई है।

शिक्षा प्राप्ति में लगाता है। यही वह अवधि है, जब मानव मस्तिष्क नवीनतम व रचनात्मक गतिविधियों से सीखकर व्यक्तिगत क्षमताओं को वास्तविक उपलब्धियों में बदल सकता है। श्रेष्ठ व शाश्वत जीवन मूल्यों से परिचित होकर जीवन को उसी में ढालता है व श्रेष्ठ चरित्र का निर्माण कर सकता है। उसकी जिज्ञासा नये ज्ञान को ग्रहण कर शांत होती है। जिज्ञासा समाधान की प्रक्रिया में नये-नये व मौलिक विचारों के सृजन की रूपरेखा बनती है व जीवन की जटिलताओं के प्रति समझ बढ़ती है। आज की भारतीय शिक्षा इस लक्ष्य को नहीं भेद पा रही है। कारण आज की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ हैं। देश में शिक्षा के प्रसार जिसकी गति शिक्षा के अधिकार कानून ने बढ़ाई है, के कारण नामांकन दर तो बढ़ी है, परन्तु उस अनुपात में शैक्षिक सुविधायें नहीं बढ़ पायी हैं। बच्चों के भविष्य का निर्माण करने वाले शिक्षकों की संख्या बहुत ही अपर्याप्त है। उनका शिक्षक प्रशिक्षण भी रचनात्मक गतिविधियों को प्रेरित करने में समर्थ नहीं है। पाठ्यक्रम की रूढ़िवादिता व जकड़न भी विद्यार्थी की रचनात्मकता को बाधित करती है। शिक्षा के असमान अवसर भी व्यक्तिगत क्षमताओं के अनुरूप शिक्षा प्राप्ति में बड़ी बाधा है। परिणाम है कि बच्चे स्कूल जाते अवश्य हैं परन्तु दिनभर स्कूल में बिताकर भी कुछ प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। स्कूल का वातावरण बच्चों के लिये रुचिकर एवं उत्साहवर्द्धक नहीं होता है। स्कूलों का वातावरण मोनोटोनस है। जहाँ एक बँधे-बँधाये ढर्रे में जीवन चलता है। कक्षा-दर-कक्षा व्यस्त कार्यक्रम साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक टेस्ट, अर्धवार्षिक व वार्षिक परीक्षाओं का अनवरत क्रम, अनवरत होमवर्क जिसे अधिकतर अभिभावकों द्वारा पूरा किया जाता है। ऐसे कारक हैं, जो शिक्षा को उबाऊ बना देती है। किसी के पास समय नहीं है कि बाल मनोविज्ञान को समझे। उसे शारीरिक गतिविधियों, रचनात्मक गतिविधियों में व्यस्त रख कर पाठेतर प्रवृत्तियों में संलग्न कर व्यक्तित्त्व निर्माण के अवसर दुर्लभ रूप में प्राप्त हो पाते हैं।

आज का सामाजिक व पारिवारिक वातावरण भी बच्चों की प्रतिभा को उभरने

देने में बड़ी बाधा है। परीक्षाओं में अधिकतम अंक प्राप्त करना ही शिक्षा का अभीष्ट हो गया है कॅरियर निर्माण ही एकमात्र लक्ष्य रह गया है। चहुँओर अधिक से अधिक प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल होना ही प्रगति का परिचायक हो गया। एकल परिवारों के चलन, आधुनिक जीवन शैली में व्यक्तिवाद के प्रभाव ने व्यक्तिगत सफलताओं को जीवन की सफलता का पर्याय बना दिया है। आज का बालक प्राथमिक स्तर की शिक्षा पश्चात् भावी प्रतियोगी परीक्षाओं की आधारशिला रखने में जुट जाता है। उसके पास बचपन की सहज गतिविधियाँ संचालित करने के लिये समय का अभाव है। मूल्यांकन की व्यवस्था भी एक पक्षीय व्यक्तित्त्व विकास के लिये जिम्मेदार है। अंक आधारित मूल्यांकन व्यवस्था में मात्र पाठ्यक्रम से संबंधित ज्ञान में अधिकतम अंक प्राप्ति ही व्यक्तिगत सफलता व प्रगति का आधार बनता है। इस व्यवस्था में शारीरिक गतिविधियों यथा खेल-कूद, पाठेतर प्रवृत्तियों, व्यक्तिगत गुणों व क्षमताओं के अनुरूप उपलब्धियों के मूल्यांकन का कोई अवसर उपलब्ध नहीं हो पाता है? स्कूली शिक्षा में बस्ते का बढ़ता बोझ भी प्रतिभा व शारीरिक विकास में बाधक बनता है। इन सभी के बावजूद छात्रों की समझ व शैक्षिक उपलब्धियाँ उनकी आयु व कक्षा के स्तर से काफी नीची बनी रहती है। अधिकांशतः उच्च मध्यम व सम्पन्न वर्ग ही कोचिंग व अन्य सुविधाओं के कारण ही प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल हो पाते हैं। बहुसंख्यक जनसंख्या इनके अभाव में अवसरों का लाभ उठाने से वंचित रहती है। यदा-कदा अति प्रतिभाशाली ही इस कतार में शामिल हो पाते हैं। इन सबका सम्मिलित परिणाम है कि आज शिक्षा व्यवस्था में बहुत ही कम संख्या विद्वान, विचारक, कलाकार प्रकृतिविद्, शिक्षाविद् आदि प्राप्त हो पा रहे हैं। उच्च शिक्षा भी प्राथमिक व सैकेण्डरी शिक्षा की भाँति लगभग अव्यवस्थित हैं और मात्र किताबी ज्ञान व उपाधियों की प्राप्ति का साधन बन चुकी है, जबकि इसे प्रगति का इंजन नये ज्ञान के सृजन का केन्द्र बनना चाहिये।

इस स्थिति में अनेक विद्वानों व विचारकों का मत है कि क्षमता, संभावनाओं और प्रतिभा विकास के लिये स्कूली शिक्षा आवश्यक नहीं है। भारत व विश्व में बड़ी संख्या में ऐसे उदाहरण विद्यमान हैं, जहाँ स्कूली, महाविद्यालयीय व विश्वविद्यालयीय शिक्षा को प्राप्त किये बिना ही प्रतिभाशाली व्यक्तियों को सफलता के शिखर पर पहुँचे हैं। बिल गेट्स, जैक हाब्स या मार्क जुकरबर्ग ऐसे ही उदाहरण हैं। भारत के एकलव्य भी ऐसा ही उदाहरण है। निष्कर्षतः प्रतिभाओं एवं क्षमताओं से परिपूर्ण व कुछ न कुछ नया रचनात्मक कार्य करने वालों के लिये औपचारिक रूप से शिक्षा व्यवस्था में गुजारे बिना ही निरन्तर अभ्यास, प्रयास व सोच से जीवन के हर क्षेत्र में उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। वे समाज को नई दिशा व नेतृत्त्व प्रदान करने वाले बन सकते हैं। यह अपवाद स्वरूप ही सम्भव हो पाता है। गौतम बुद्ध या महात्मा गाँधी हर समय हर समाज में जन्म लें, यह संभावना बहुत क्षीण होती है, ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि बहुसंख्यक जनसाधारण के लिये ऐसी शिक्षा विकसित की जाय जो व्यक्तिगत प्रतिभा को निखारे, उच्च चरित्र, आदर्श व नैतिक गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति का निर्माण करे। साथ ही वह राष्ट्र, समाज, परिवार की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं को पूर्ण करने योग्य समाज का सदस्य बने। स्कूल ऐसी ही शिक्षा के पर्याय बनने चाहिए। ❑

वर्तमान विद्यालयों व महाविद्यालयों में एक समान पाठ्यचर्या व एक समान शिक्षण विधियों से एक-सा परिणाम प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। यह मोनोकल्चर कृषि के समान ही है। मोनोकल्चर शिक्षा से थोक इंजिनियर व एमबीए उत्पन्न हो रहे हैं। बाजार में उनका खरीददार नहीं मिल रहा है। सहायक कर्मचारी व अन्य पद पाने के लिए घोर संघर्ष करना पड़ रहा है। इन इंजिनियर्स व एमबीए की मोनोकल्चर कृषि पर खर्च धन बेकार जा रहा है। उपाधिधारी बेरोजगारों की इस भीड़ से निपटने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। इनको नियोजित करने का प्रयास सरकार व समाज के लिए बड़ी चुनौती बना हुआ है।

मोनोकल्चर के पोषक स्कूल

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

वर्तमान विद्यालयों व महाविद्यालयों की तुलना कृषि की मोनोकल्चर प्रणाली से की जा सकती है। मोनोकल्चर कृषि में एक ही प्रकार की फसल को बहुत बड़े क्षेत्र में बोया जाता है। एक ही नस्ल के पशुओं को बड़ी संख्या में एक साथ पालना भी मोनोकल्चर कहलाता है। यह एक अप्राकृतिक विधि है। वन, प्राकृतिक कृषि है जिसमें विभिन्न प्रकार के पादप एक स्थान पर उगते हैं। ऊर्जा लागत की दृष्टि से प्राकृतिक कृषि की उत्पादन दर अधिक पाई गई है।

मोनोकल्चर कृषि के कई नुकसान हैं। एक ही प्रकार के पादपों की संरचना व आवश्यकताएँ एक समान होती हैं। इस कारण भूमि के अन्दर व भूमि के बाहर पादपों में प्रतिस्पर्धा बहुत तीव्र होती है। ऐसी फसल को उपलब्ध कराए जल व खनिज लवणों का बड़ा भाग व्यर्थ चला जाता है। मोनोकल्चर कृषि पर रोगों व हानिकारक जीवों के पनपने की संभावना बहुत अधिक होती है। संक्रमण जल्दी ही पूरी खेती को नष्ट कर सकता है। फसल तैयार होने पर आवश्यकता से अधिक उपलब्ध होने से उसका बाजार मूल्य गिर जाता है। लागत मूल्य नहीं मिल पाने के कारण किसानों द्वारा आत्महत्या करना आज देश की एक बड़ी समस्या है।

वर्तमान विद्यालयों व महाविद्यालयों में एक समान पाठ्यचर्या व एक समान शिक्षण विधियों से एक-सा परिणाम प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। यह मोनोकल्चर कृषि के समान ही है। मोनोकल्चर शिक्षा से थोक इंजिनियर व एमबीए उत्पन्न हो रहे हैं। बाजार में उनका खरीददार नहीं मिल रहा है। सहायक कर्मचारी व अन्य को पद पाने के लिए घोर संघर्ष करना पड़ रहा है। इन इंजिनियर्स व एमबीए की मोनोकल्चर कृषि पर खर्च किया धन बेकार जा रहा है। उपाधिधारी बेरोजगारों की इस भीड़ से निपटने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। इनको नियोजित करने का प्रयास सरकार व समाज के लिए बड़ी चुनौती बना हुआ है।

वर्तमान के विद्यालयों व महाविद्यालयों मोनोकल्चर से भी घटिया कृषि के उदाहरण हैं। मोनोकल्चर कृषि में बोया जाने वाला बीज अनुवांशिकता की दृष्टि से एक समान होता है। स्कूल व कॉलेज में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी

अनुवांशिकता की दृष्टि से बहुत भिन्नता लिए होते हैं। शिक्षा द्वारा सभी को डॉक्टर या इंजिनियर में बदलने का प्रयास किया जाता है। प्रतियोगी परीक्षा के लिए तैयार कराने वाले संस्थानों को मोनोकल्चर का विशेषज्ञ स्वीकार कर लिया गया है।

सुविधाजनक है मोनोकल्चर

प्रश्न उठ सकता है कि वर्तमान के विद्यालयों व महाविद्यालयों की शिक्षा भारतीय समाज का भला नहीं कर पा रही है तो इसे बदला क्यों नहीं जाता? इसका उत्तर प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली है। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थवश इस प्रणाली को लागू किया। देश की आजादी के बाद सुधार के सुझाव तो बहुत आए मगर उनका क्रियान्वयन नहीं हो सका। पाँच वर्ष के शासनकाल से शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन संभव नहीं है। देश में चुनी गई सरकार का ध्यान अपने को पुन: चुने जाने की स्थितियों का निर्माण करना होता है। इस कारण कोई भी सरकार बड़ा जोखिम लेने की स्थिति में नहीं होती। यही कारण है कि शिक्षा में परिवर्तन का प्रचार तो बहुत हुआ, वास्तव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। 1986 की शिक्षा नीति को लेकर बहुत प्रचार हुआ, उसको कितना प्रतिशत लागू किया गया, इसकी समीक्षा नहीं की गई। शिक्षा के नाम पर स्कूली चार-दीवारी मजबूत होती गई है।

व्यर्थ है फेल-पास करना

वर्तमान सरकार ने शिक्षा के अधिकार कानून में परिवर्तन कर कक्षा 5 व 8 में लिखित परीक्षा को पुन: अनिवार्य कर दिया है। बच्चों को फिर फेल घोषित किया जाने लगेगा। यह निर्णय स्कूली व्यवस्था को मजबूत करने वाला है। बच्चे की सफलता की पहचान ज्ञान से नहीं, प्रमाण पत्र से होगी। स्कूल सीखने के नहीं अपितु सीखे जाने का प्रमाण-पत्र देने के स्थान हो गए हैं। आठवीं तक किसी को फेल नहीं करने का निर्णय गलत नहीं था। गलती तो उसकी भावना को समझने में हुई। उसका ठीक से क्रियान्वयन करवाने में सरकारें असफल रहीं। ठीक से क्रियान्विति कराने की बजाय निर्णय को उलटना सरकारों को अधिक सुविधाजनक लगा। इंसपेक्टर राज ही सरकारों की पूछ कराता है। फेल-पास की व्यवस्था इंसपेक्टर राज की पोषक है।

मजबूर होते रामानुजन

स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि शिक्षा का अर्थ बालक की अंतर्निहित क्षमताओं का पूर्ण विकास करना है। स्कूलों में प्रशासकीय व्यवस्था द्वारा बताए उद्देश्य के अनुरूप बच्चों को तैयार किया जाता है। स्कूल बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा को नष्ट कर उसे परीक्षा में अच्छे अंक लाने के लिए तैयार करते हैं। बच्चों की मौलिक विचार-क्षमता, समझ व जिज्ञासु प्रवृति को खत्म कर उन्हें मेरिट लाना सिखाते हैं।

महान गणितज्ञ रामानुजन को भी स्कूली व्यवस्था ने असफल घोषित कर दिया था। रामानुजन का भाग्य अच्छा था कि हार्डी जैसा शिक्षक मिल गया। उनकी नैसर्गिक प्रतिभा को पहचान लिया गया। गणित की उनकी नैसर्गिक प्रतिभा को पूरी तरह विकसित होने का अवसर दिया गया। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की योग्यता के मूल्यांकन हेतु उनकी उपाधि का प्रश्न उठाना स्कूली मानसिकता का ही प्रतीक है।

स्कूली व्यवस्था में पाठ्यचर्या का कोई मनोवैज्ञानिक आधार नहीं होता। बहुत ही तदर्थ विधि से पाठ्यपुस्तकें तैयार की जाती हैं। उनके आधार पर ही परीक्षा होती है। शिक्षक, शिक्षार्थी, अधिकारी व सरकार की सफलता उसी परीक्षा के आधार पर तय होती है। इस कारण ज्ञान बढ़े या नहीं बढ़े कक्षा पास हो जाती है। परीक्षा नकल मार कर पास की जा सकती है। स्कूलों द्वारा जारी प्रमाण-पत्र व व्यक्ति के ज्ञान में सह संबन्ध दिखाई नहीं देता।

उपाधि या प्रमाण-पत्र देना उत्पाद की अच्छी पैकिंग करना है, अन्दर उत्पाद भी अच्छा होगा यह आवश्यक नहीं। आज की स्कूली व्यवस्था में उपाधि या प्रमाण-पत्र पाना कठिन नहीं है। शैक्षिक प्रमाण-पत्र विषय ज्ञान का पर्याय नहीं होता। फुटबॉल में उच्च शैक्षिक योग्यताधारी व्यक्ति प्रतियोगिता में जीत नहीं दिला सकता। जीत तो मैदान में अच्छा खेल दिखाने वाला ही दिला सकता है चाहे उसके पास कोई प्रमाण-पत्र नहीं हो। प्रमाण-पत्र योग्यता के प्रतीक होते तो फिल्म संस्थान से प्रमाण-पत्र लाने वालों की फिल्में हिट होनी चाहिए। जबकि प्रतिभा वाले बिना प्रमाण-पत्र के ही अधिक सफल होते हैं। हम शैक्षिक योग्यता के आधार पर शिक्षकों का चयन करते हैं। अनुभव बताता है कि प्रथम श्रेणी प्राप्त सभी व्यक्ति अच्छे शिक्षक साबित नहीं होते। तृतीय श्रेणी और कई बार तो, औपचारिक योग्यताहीन भी, अच्छे शिक्षक सिद्ध होते रहे हैं। इवान इलिच ने अमेरिका की स्कूली शिक्षा व्यवस्था के विषय में कहा है कि स्कूली शिक्षा के माध्यम से प्राप्त प्रमाण-पत्र व्यक्ति के ज्ञान व कुशलता को ठीक तरह प्रकट नहीं करते। इलिच का कहना है कि यह सोच सही नहीं है कि स्कूली व्यवस्था को पार करने मात्र से व्यक्ति ज्ञानी हो जाता है।

बच्चे संभावनाओं से पूर्ण होते हैं मगर उन संभावनाओं को तलाशने व उनको विकसित करने की व्यवस्था स्कूलों में नहीं है। आज कई अनौपचारिक प्रयास नृत्य व गायन की प्रतिभाओं को पहचान कर उन्हें विकसित करने में सफल हो रहे हैं। स्कूली व्यवस्था में यह संभव नहीं है। ज्ञान के विकास हेतु स्कूलों को चारदीवारी से मुक्त करने की आवश्यकता है। स्कूल का विकल्प तलाशने की आवश्यकता है। ❑

(बाल साहित्य एवं विज्ञान विषयक लेखक)

जैसा शिक्षक वैसी शिक्षा

❑ **वासुदेव प्रजापति**

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि – यह अत्यन्त व्यावहारिक सूत्र है कि जैसा शिक्षक होगा वह वैसी ही शिक्षा देगा। शिक्षक भारतीय दृष्टि का है तो वह भारतीय शिक्षा देगा, परन्तु शिक्षक अभारतीय दृष्टि का है तो वह अभारतीय जीवन मूल्यों की शिक्षा देगा। स्वामी रामतीर्थ के बारे में वर्णन मिलता है कि स्वामी रामतीर्थ लाहौर के मिशन कॉलेज में गणित के प्राध्यापक नियुक्त हुए। उस समय उनका नाम तीरथराम था। तीरथराम के पढ़ाने का ढँग ऐसा अनोखा था कि उस महाविद्यालय में गणित विषय लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या बढ़ गई। जब तीरथराम कक्षा में पढ़ाते थे तो उनकी कक्षा में जिनका विषय गणित नहीं है, ऐसे विद्यार्थी तथा साथी प्राध्यापक भी आ बैठते थे। क्यों? इसलिए कि वे मात्र गणित नहीं पढ़ाते थे, गणित के साथ-साथ श्रीमद्भगवद्गीता का कोई श्लोक उद्धृत कर जीवन की शिक्षा देते थे। अर्थात् जैसा शिक्षक वैसी शिक्षा।

चिन्तन का केन्द्र भारत हो – वर्तमान में भी शिक्षकों की स्थिति तो वही है। बस! अन्तर आया है तो इतना कि उनकी दृष्टि बदल गई है। वे भारतीय दृष्टि के स्थान पर यूरोपीय दृष्टि से प्रभावित हैं। जैसे आज की शिक्षा विद्यालय में कैद है, वैसे ही आज का शिक्षक अभारतीय दृष्टि में कैद है। प्रो. डी.एस. कोठारी का एक संस्मरण है। प्रो. कोठारी से एक पत्रकार ने प्रश्न पूछा कि 'आपकी दृष्टि में भारत के विद्वानों की मूल समस्या क्या है ? उन्होंने कहा कि भारतीय विद्वानों की मूल समस्या एक ही है कि उनका चिन्तन भारत से हटकर यूरोप केन्द्रित हो गया है। पत्रकार ने फिर पूछा, इसका उपचार क्या है ? कोठारी जी ने कहा, एक ही उपचार है, उनका चिन्तन फिर से भारत केन्द्रित बना दो, सब समस्याएँ अपने आप सुलझ जायेंगी। अतः हमें भारतीय शिक्षा को पुनर्प्रतिष्ठित करना है तो हमारा पहला काम शिक्षक को यूरोपीय चिन्तन की कैद से मुक्त करवाकर, उसे फिर से भारतीय चिन्तन पर लाना होगा। जब शिक्षक भारतीय चिन्तन वाला होगा तो वह भारतीय शिक्षा ही देगा।

शिक्षा शिक्षकाधीन हो – भारत की शिक्षा सदैव शिक्षकाधीन रही है। विगत दो सौ वर्षों में शिक्षक, गुरु से शिक्षाकर्मी बन गया है। शिक्षक बेचारा बन गया है। यही कारण है कि आज कोई भी शिक्षक बनना नहीं चाहता, मजबूरी में बनना पड़ता है। ऐसे शिक्षक, शिक्षक पद की एवं शिक्षा क्षेत्र की प्रतिष्ठा घटाते ही हैं। आज शिक्षक की शैक्षिक प्रतिष्ठा भी नहीं है। वह केवल पढ़ाता है, परन्तु पढ़ाने से सम्बन्धित निर्णय वह नहीं करता। उसे किन विद्यार्थियों को पढ़ाना है, वह नहीं जानता।

प्रो. डी.एस. कोठारी का एक संस्मरण है। प्रो. कोठारी से एक पत्रकार ने प्रश्न पूछा कि 'आपकी दृष्टि में भारत के विद्वानों की मूल समस्या क्या है ? उन्होंने कहा कि भारतीय विद्वानों की मूल समस्या एक ही है कि उनका चिन्तन भारत से हटकर यूरोप केन्द्रित हो गया है। पत्रकार ने फिर पूछा, इसका उपचार क्या है ? कोठारी जी ने कहा, एक ही उपचार है, उनका चिन्तन फिर से भारत केन्द्रित बना दो, सब समस्याएँ अपने आप सुलझ जायेंगी। अतः हमें भारतीय शिक्षा को पुनर्प्रतिष्ठित करना है तो हमारा पहला काम शिक्षक को यूरोपीय चिन्तन की कैद से मुक्त करवाकर, उसे फिर से भारतीय चिन्तन पर लाना होगा। जब शिक्षक भारतीय चिन्तन वाला होगा तो वह भारतीय शिक्षा ही देगा।

अन्य कोई उसे विद्यार्थी देता है, अन्य कोई उसे पाठ्यक्रम देता है। परीक्षा कोई और लेता है, जाँचता कोई और है तथा प्रमाण-पत्र या डिग्री कोई और ही देता है। विद्यार्थी का शुल्क लेने वाला कोई और है तथा शिक्षक को वेतन देने वाला कोई और। अर्थात् उसे तो केवल पढ़ाना है, और कुछ भी नहीं करना है।

जड़ की नहीं चेतन की प्रतिष्ठा हो – अंग्रेजी शिक्षा के कारण दो सौ वर्षों में भारतीय जीवन व्यवस्था मे जो परिवर्तन हुए हैं, उनका सबसे अधिक विनाशकारी पहलू यह है कि हमने मनुष्य के स्थान पर यंत्र को और व्यवस्था के क्षेत्र में तंत्र को प्रतिष्ठित कर दिया है। यंत्र और तंत्र दोनों ही निर्मनुष्य हैं। अतः मनुष्य के अन्तःकरण के गुण-दया, करुणा, अनुकम्पा, समझ, विवेक आदि यंत्र व तंत्र से संचालित नहीं हो सकते। यंत्र व तंत्र दोनों जड़ हैं और चेतन मनुष्य को नियमन और नियन्त्रण में रखते हैं। स्वाधीनता से पूर्व अंग्रेजों का नियंत्रण था, अब तंत्र और यंत्र का नियन्त्रण है। पराधीनता तो आज भी है।

इस तंत्र ने केवल शिक्षा को ही नहीं वरन जीवन के सभी पहलुओं को डस लिया है परिणामस्वरूप मनुष्य का मन मर गया है और बुद्धि दब गई है। उसे न तो पराधीनता से मुक्त होने की इच्छा है और न वह मुक्त होना जानता है। उसने यह सबकुछ मन से स्वीकार कर लिया है। हमें उपचार तो मूल रोग का करना है, अर्थात् जड़ के स्थान पर चेतन की प्रतिष्ठा करना है अर्थात् शिक्षक को प्रतिष्ठित करनी है, शिक्षक को प्रतिष्ठित करने के लिए उसके मन और बुद्धि को सक्रिय करना होगा।

शिक्षक के मन को पुनर्जीवित करना – शिक्षक का मन मर गया है, वह अब कहने लगा है कि अब इस तंत्र में कुछ नहीं हो सकता, हमारे करने से क्या होने वाला है ? सब कुछ तो सरकार के हाथ में है। मुझे क्या पड़ी है, मैं क्यों करूँ ? मेरा काम तो पढ़ाने का है, मैं किसी झंझट में क्यों पडूँ ? विद्यार्थी सुनते नहीं, अभिभावकों के पास समय नहीं। उनके भले के लिए करो तो उल्टी शिकायत कर देते हैं, संचालक डाँटते हैं अथवा लिखित कार्यवाही करते हैं। इसलिए अच्छा यही है कि पाठ्यक्रम पूरा करो, अपना वेतन लो और मौज करो। अतः शिक्षा को शिक्षकाधीन बनाने हेतु सबसे पहले शिक्षक के मरे हुए मन को जीवन्त करना होगा, और निष्क्रिय बुद्धि को सक्रिय करना होगा।

शिक्षक प्रबोधन के प्रमुख चरण – आज के शिक्षक का मन स्वतंत्रता की नहीं उपभोग की चाह रखता है और बुद्धि दूसरों की भलाई के लिए नहीं, अपनी ही भलाई के लिए प्रयुक्त होती है। ऐसे मरे हुए मन को जीवन्त बनाने का काम कठिन है, किन्तु अनिवार्य है। अतः शिक्षक प्रबोधन के प्रमुख चरण अधोलिखित हैं –

शिक्षक में स्वतंत्रता की चाह और आवश्यकता निर्माण करना। शिक्षा तभी स्वतंत्र होती है, जब शिक्षक स्वतंत्र होता है। शिक्षक स्वतंत्र बनना तो चाहता है, परन्तु स्वतंत्रता के साथ जो दायित्व आता है, वह उसे लेना नहीं चाहता।

प्रबोधन का दूसरा मुद्दा दायित्व का है, क्योंकि शिक्षा को ठीक करने का दायित्व शिक्षक का ही है। जैसे- 'यह मेरा घर है और मुझे उसे चलाना है।' ऐसा मानने में स्वतंत्रता तो है ही, साथ ही साथ अधिकार और दायित्व दोनों हैं। इसके विपरीत घर का जो नौकर है, वह न तो अधिकारपूर्वक काम करता है, न दायित्व बोध से करता है, क्योंकि घर उसका नहीं है। शिक्षा क्षेत्र में आज यही स्थिति बनी हुई है।

व्यवस्था तंत्र स्वभाव से ही जड़ होता है, उसने शिक्षा को भी जड़ बना दिया है। शिक्षक से अपेक्षा है कि वह शिक्षा को जड़ता से मुक्त करे।

अर्थनिष्ठ समाज में ज्ञान, संस्कार, चरित्र आदि की कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। वहाँ वेतन देने वाला दाता और लेने वाला नौकर समझा जाता है, फिर चाहे वह शिक्षक हो, पुजारी हो या धर्माचार्य हो। इस स्थिति में से वेतन लेने वाले को मुक्त करना होता है, अतः उसमें मुक्त होने की चाह जगाना आवश्यक है।

ऐसा किया जा सकता है कि 25 से 50 वर्ष की आयु तक नौकरी करना, सांसारिक जिम्मेदारियों से जितना सम्भव हो मुक्त हो जाना और फिर शेष जीवन शिक्षा की सेवा में लगाना।

कुछ शिक्षक प्रारम्भ में ही बिना वेतन के अध्यापन कार्य में लग जाय और अपना स्वतंत्र विद्यालय शुरू करें, जहाँ शिक्षा पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो।

देश के प्रत्येक राज्य में एक ऐसा शोध संस्थान हो, जहाँ अध्ययन-अनुसंधान और पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य शिक्षक अपनी जिम्मेदारी पर करते हों। यहाँ वेतन की कोई व्यवस्था न हो, समाज के सहयोग से सब कुछ चलता हो। आज भी देश में ऐसे लोग हैं, जो स्वप्रेरणा से शिक्षा की सेवा कर रहे हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है और वे व्यक्तिगत स्तर पर ही यह सब करते हैं। शिक्षा तंत्र में परिवर्तन हो सके, ऐसा उनका प्रभाव नहीं है।

शिक्षकों को 'भारत में शिक्षा को भारतीय बनाओ' सूत्र का अधिष्ठान दिया जा सकता है। और जो यह मानते हैं कि शिक्षा मुक्त होनी चाहिए, उन्हें इसमें जोड़ा जाए और उनके प्रयासों की जानकारी समाज को दी जाय।

जिस प्रकार स्वराज्य का बलिदान देकर सुराज्य प्राप्त नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार जड़ तंत्र की कैद में रहकर भारतीय शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती। बस! इसी बात को समझाने की आवश्यकता है। साररूप में शिक्षक को स्वतंत्र एवं दायित्त्व बोध वाला बनाने से ही शिक्षा भारतीय होगी। ❑

(पूर्व मंत्री-विद्या भारती, जोधपुर प्रान्त)

जिज्ञासा अभ्युदय व नैसर्गिक गुणों को प्रोत्साहन

पिछले कई दशकों से हम हमारे बच्चे को पढ़ा रहे हैं कि 'मशीन' मानव से अधिक दक्षता से कार्यों को सम्पादित कर सकती है यह उचित नहीं हैं, मशीन 'चिप' की सहायता से कार्य करती है जबकि मनुष्य मानवीय संवेदनाओं को महत्त्व देता है अत: अत्यधिक 'मशीन' पर निर्भरता उचित नहीं है यही बच्चों को सिखाना चाहिये। क्योंकि उनमें सृजनशीलता व तर्क शक्ति को विकास का बीज तो अभी स्फुटित होना है अत: हमें विद्यालयों में बच्चों की जिज्ञासा-समाधान पर ध्यान देना होगा। शिक्षण संस्थाओं की शिक्षा-व्यवस्था का अध्ययन करने पर आभास होता है कि वर्ष पर्यन्त व प्रतिदिन विद्यार्थियों को अध्ययन परीक्षा, शैक्षिक-गतिविधियों, सह शैक्षिक गतिविधियों व अतिरिक्त सह शैक्षिक गतिविधियों में सहभागिता अनिवार्य है, चाहे विद्यार्थियों की उस विषय में रुचि है या नहीं। इसी कारण बालक उस थोपे हुए कार्य को पूर्ण मनोयोग से नहीं करता है व स्वयं को विद्यालय कैद महसूस करता है।

❑ **प्रो. मधुर मोहन रंगा**

स्वाधीनता के बाद भी शिक्षा की व्यवस्था, विस्तार, गुणवत्ता, आधारभूत संरचना, उद्देश्य, सामाजिक सरोकार से उनका जुड़ाव, विद्यार्थी-समाज-राष्ट्र के अन्तर्सम्बंध आदि विषयों पर चर्चा होती है, वैसे विचार-विमर्श व व्याख्या होने से परिष्कृत व परिमार्जित पाथेय सामने आता है। परन्तु प्रश्न उठता है कि आजादी के बाद देश में शिक्षा के संबंध में आयोग व नीतियाँ बनी सभी ने समय-समय पर सुझाव दिये, परन्तु आश्चर्य होता है कि आज एक बार फिर विद्यालयी शिक्षा चर्चा का विषय बन सामने आ गया, क्या परीक्षा आधारित मूल्यांकन पद्धति पक्षपाती है ? शिक्षा का अधिकार ने शिक्षा को विद्यालय में कैद बना दिया, ये मोनोकल्चर के वाहक है। विद्यालय, बच्चों की मौलिकता को नष्ट कर रहे हैं? कहीं विद्यालयविहीन शिक्षा की बात चर्चा का विषय बनती है परन्तु उनके सकारात्मक परिणाम नहीं आते हैं। अत: क्या हमारी नीतियाँ दोषी है ? या शिक्षक या समाज या सरकारें या संस्थाएँ ? कौन है जो आज भी इस देश को भारत व इंडिया में बाँट रहा है ? प्रभावित हो रही है शिक्षा व्यवस्था, शिक्षक व हित चिंतक। अत: समग्र मूल्यांकन करना आवश्यक होगा कि इच्छित परिणाम किस प्रकार प्राप्त किये जा सकें। शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास होना चाहिये, अर्थात् उसमें निहित पूर्णता का विकास करना है, अन्तर्निहित ज्ञान का प्रगटीकरण व उसे समग्रता तक ले जाना ही शिक्षा का उद्देश्य है। हमारा दायित्त्व है कि बालकों में जिज्ञासा उत्पन्न हो, इसी से उनमें सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है, जो बालकों में सुषुप्तावस्था में होती है, इसके उत्प्रेरण से ही विचारों का उदय होता है, विचारों का उदय होने से ही तर्क शक्ति का प्रार्दुभाव होता है। तर्क शक्ति से ही ज्ञान परिष्कृत होकर नवाचारों को जन्म देती है। नवाचारों के कारण ही वैज्ञानिक अवधारणाओं, सामाजिक अन्वेषणों व विचार श्रृंखला का जन्म होता है। नवाचारों को प्रोत्साहन देने से ही बालकों में सृजनात्मक अधिगम को स्थान मिलता है। अनवरत नवाचारों के सृजन के कारण ही बालकों में अर्जित ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उपर्युक्त अधिगम प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक सिद्धांत ''विविध बोधगम्यता सिद्धांत (Theory of Multiple Intelligence) के आधार पर अवलम्बित है। इसी अवधारणा के कारण ही बालकों में नैसर्गिक गुणों का विकास होगा। इन गुणों का आधिक्य बालकों के अधिकतम अधिगम समय (Period of maximum learning) में ही होता है।

आज के संदर्भ में विद्यार्थियों का जीवन यांत्रिक जीवन (Mechanical life) हो गया है , क्योंकि उनके भार से अधिक भार तो बस्ते का हो गया है । सारी दिनचर्या स्कूल और पढ़ाई के साथ तय होती है - ओह! छह बज गये, उठो स्कूल जाना है, पाँच बज गये ट्यूशन पर जाना है, फिर होम वर्क करना है। हमने शारीरिक सक्रियता व श्रम की गुंजाइश ही नहीं छोड़ी, बच्चों की सारी

दौड़ अंकों के लिए हो गई है, इसलिए उसके पास मैदान में क्रीड़ा करने का समय ही नहीं है। आज के भौतिकवादी व तथाकथित वैज्ञानिक, परिवेश में अपसंस्कृति के प्रभाव के कारण व पूँजीवादी सोच जिस प्रकार हमारी संस्कृति पर प्रभाव डाल रही है, उससे सबसे अधिक प्रभावित आने वाली पीढ़ी व हमारे बच्चे हो रहे हैं। एकाकी परिवार व आर्थिक सम्पन्नता की ओर अग्रसर होते परिवार के पास बच्चों के लिए समय नहीं है। फिर हम विद्यालय को दोषी मान बैठे हैं, यह कहाँ तक उचित है? संयुक्त परिवार के विघटन के कारण बालक एकाकी वातावरण में रहता है, इसी कारण माता-पिता बच्चों को आया के पास छोड़कर अर्थ अर्जन हेतु चले जाते हैं। बालक टेलीविजन, सेल फोन का उपयोग कर विभिन्न खेलों में अपना समय बिताता है अर्थात् बालक के भविष्य को सिर्फ विद्यालय या ट्यूशन के भरोसे छोड़कर हम अपने कार्य की इतिश्री मानकर विद्यालय को दोषी ठहराते है अत: जिम्मेदारियों को एक दूसरे पर डालने से ही आज इस विषय पर चर्चा होना स्वाभाविक हो गया है।

आज के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक एक वेतन भोगी कर्मचारी बनकर रह गया है उसके लिए विभिन्न कारक जिम्मेदार है , परन्तु शिक्षक को ही विद्यालय प्रांगण में शैक्षिक वातावरण का निर्माण कर बालकों मे उनकी जिज्ञासानुसार उनकी रुचि का संज्ञान लेकर ही उसकी मेधा को पहचानना होगा। विद्यालयों में प्रायोगिक कार्य पर अधिक बल देना होगा। बालकों में जिज्ञासा होती है उसके कारण यह प्रत्येक बिन्दु पर तर्क करता है उसकी तर्कशक्ति परिष्कृत तभी होगी जब उसकी प्रत्येक जिज्ञासा का सकारात्मक जवाब मिलेगा यहाँ यह उदाहरण देना प्रासंगिक होगा कि गूगल बॉय के नाम से प्रसिद्धि पंडित चाणक्य के माता-पिता व परिवार के अग्रजों ने उनकी छुपी प्रतिभा (Hidden talent) को प्रोत्साहन व पोषक वाातावरण दिया तभी उसकी मेघा परिष्कृत होकर आज समाज के सामने है, अत: नैसर्गिक गुणों के प्रोत्साहन से ही जिज्ञासा का अभ्युदय होेगा ऐसी स्थिति में बालकों की मेधा को शैक्षिक वातावरण मिलेगा इसी से बालकों में चेतना का विकास होगा वे अपनी जिज्ञासानुसार ज्ञान प्राप्त करेंगे व विद्यालय में अपने आप को कैद महसूस नहीं करेंगे।

पिछले कई दशकों से हम हमारे बच्चे को पढ़ा रहे हैं कि 'मशीन' मानव से अधिक दक्षता से कार्यों को सम्पादित कर सकती है यह उचित नहीं हैं, मशीन 'चिप' की सहायता से कार्य करती है जबकि मनुष्य मानवीय संवेदनाओं को महत्त्व देता है अत: अत्यधिक 'मशीन' पर निर्भरता उचित नहीं है यही बच्चों को सिखाना चाहिये। क्योंकि उनमें सृजनशीलता व तर्क शक्ति के विकास का बीज तो अभी स्फूटित होना है अत: हमें विद्यालयों में बच्चों की जिज्ञासा-समाधान पर ध्यान देना होगा। शिक्षण संस्थाओं की शिक्षा-व्यवस्था का अध्ययन करने पर आभास होता है कि वर्ष पर्यन्त व प्रतिदिन विद्यार्थियों को अध्ययन परीक्षा, शैक्षिक-गतिविधियों, सह शैक्षिक गतिविधियों व अतिरिक्त सह शैक्षिक गतिविधियों में सहभागिता अनिवार्य है, चाहे विद्यार्थियों की उस विषय में रुचि है या नहीं। इसी कारण बालक उस पर थोपे हुए कार्य को पूर्ण मनोयोग से नहीं करता है व स्वयं को विद्यालय कैद महसूस करता है। प्रत्येक क्रियाकलाप का उसके मस्तिष्क में अध्यंकन होता रहता है, यही उसके भविष्य के व्यक्तित्त्व की आधारशिला होता है।

बाल्य काल में बालक जो सीखता है, स्वयं की रुचि के अनुसार, तभी वह उसका अभ्यास भी करता है, उसका उसके मानस पटल पर अमिट प्रभाव रहता है। विभिन्न शोधों से अध्यंकन के प्रभाव का महत्त्व बताया गया है। क्योंकि यह उसका अधिकतम अधिगम काल होता है, इसे समीक्षात्मक अवधि कहते हैं, Psychological Bulletin, Vol. (3) एडंल 2015 के अनुसार व्यवहारात्मक विकास जीन-अनुवांशिकता (genetic inheritence), जन्मजात (Congenital), गुण -लक्षणों सांस्कृतिक सन्दर्भ (Cultural Context), वातावरण, स्वयं की अभिरुचि के साथ-साथ पैतृक क्रियाओं का परिणाम होता है। बालक की अभिरुचि व अधिगम का प्रकार पाठ्यचर्या यदि रोचक है तभी बालक के मन में उदय होने वाले विचारों को परिष्कृत व प्रफुल्लित होने का अवसर मिलता है तब वह विद्यालय में अपने आप को कैद नहीं महसूस करता है। अब अद्विकासीय पारिस्थितिकी (Evolutionary Ecology) ने एक और भागीदार की ओर संकेत दिया है। वह है एपीजीनीय आनुवंशिकी अर्थात् जीन से हटकर आनुवंशिकी जो जीनीय अभिव्यक्ति पर प्रभाव डालती है। अत: विकसित होते बालकों की नैसर्गिक अभिव्यक्ति पर ध्यान देने से बालकों की अध्ययन-अधिगम की रुचि में वृद्धि होगी तभी बालक विद्यालयों में पूर्ण मनोयोग से अध्ययन करेंगे । ❑

(विभागाध्यक्ष-पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, छ.ग.)

विद्यालय में कैद बचपन

❑ सुमनबाला

विद्यालय के भययुक्त, बन्धनयुक्त और बोझिल वातावरण को खत्म कर ही हम बालक का सही विकास कर सकते हैं। इस भययुक्त वातावरण की विद्यालय रूपी भयशाला को आनन्दशाला में बदलने के लिए विद्यालय को बालकों की क्रीड़ास्थली बनाना होगा जहाँ बालक स्वतंत्रता और आनन्दपूर्वक सीखने की और बढ़े। इसके लिए विद्यालय का अपना एक ऐसा शिक्षण-शास्त्र हो जिसमें सीखना और खेलना अलग-अलग न हो सीखना और सिखाना अलग-अलग न हो। बालक पास-फेल के बजाए सीखने और क्षमता विकसित करने का प्रयास करें। बालक हँसते हुए विद्यालय आए और गुनगुनाते हुए सीखें। अगले दिन पुन: विद्यालय नए उत्साह जोश, उमंग और कुछ नया करने की ललक से आए। विद्यालय बालक का स्वागत करें।

वर्तमान में विद्यालय शिक्षा के लिए अनिवार्य संस्था के रूप में स्थापित हैं और समाज के एक अहम अंग के रूप में कार्य कर रहे हैं। बालकों को शिक्षित करने का दायित्त्व इसी संस्था पर है और यही कारण है कि विद्यालय एक उपसमाज तन्त्र भी कहलाते हैं; परन्तु कुछ प्रश्न कौंधते हैं कि क्या वास्तव में हमारे विद्यालय इस दायित्त्व का निर्वाह सही रूप व प्रकार से कर पा रहे हैं ? क्या विद्यालय बालकों को सही मायनों में शिक्षित करने का कार्य कर पा रहे हैं? क्या विद्यालय द्वारा बालक के व्यक्तित्त्व का निर्माण सही तरह से हो पा रहा है और क्या विद्यालय से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् बालक अपने समाज, राष्ट्र और विश्व के निर्माण में अपनी सहभागिता सही प्रकार से दे पा रहा है। उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर हमें निराशा प्रदान करने वाले ही हैं। यह स्थिति वर्तमान की ही नहीं अपितु भूतकाल में भी विद्यालयों की भूमिका मानव निर्माण की नहीं कही जा सकती। वर्तमान में भी बालकों के लिए विद्यालयों का आड्म्बर यही है कि बच्चे केवल विद्यालयों में ही सीखते हैं। उन्हें केवल विद्यालयों में ही पढ़ाया जा सकता है और उन्हें स्कूल जाना ही चाहिए। बालकों को जो वहाँ (विद्यालयों में) कहा जाए वही करना चाहिए। वे (बालक) अपनी सीमाओं को पहचानें और बच्चों की तरह व्यवहार करें। विद्यालय से बाहर उनके बचपन और शिक्षा की कल्पना ही नहीं की जाती है। इवान इलिच के शब्दों में इसे स्कूलमय समाज की संज्ञा दी गई है और वहाँ करवाई जाने वाली क्रिया-प्रक्रियाओं को उन्होंने स्कूल का आड्म्बर कहा है।

इवान इलिच ने विद्यालय की जड़ता, उसकी गतिहीनता, उदासीनता पर प्रहार करते हुए स्कूलयुक्त विद्यालय की वकालत की। उनके शब्दों में विद्यालय ऐसी संस्था है कि जो इस स्वयंसिद्धि पर आधारित है कि ज्ञान, शिक्षण का प्रतिफल है और संस्थायी सोच इस स्वयं सिद्धि को ही मानते चलती है, जबकि प्रमाण बहुतायत में उसके विपरीत हैं। हम जो कुछ जानते हैं उसका अधिकांश भाग हमने स्कूलों के बाहर ही सीखा है। छात्र अपनी ज्ञान प्राप्ति की अधिकांश लब्धि शिक्षकों के होने के बावजूद उनके बगैर ही करते हैं। प्रत्येक बालक यह सीखता है कि विद्यालय के बाहर कैसे रहा जाए, जिया जाए। कैसे बोला जाए। कैसे सोचा जाए, कैसे काम किया जाए, कैसे अनुभव किया जाए, कैसे खेला जाए, संसार के कई लोग कभी भी विद्यालय नहीं गये परन्तु उन्होंने समाज को सही राह दिखाने का कार्य किया है। हमारे देश के बहुत से संत-संन्यासियों ने बिना औपचारिक शिक्षा प्राप्त किये ही समाज निर्माण में अपना अहम योगदान दिया है। इसी प्रकार विद्यालयों और शिक्षा संस्थाओं

द्वारा औपचारिक शिक्षा प्राप्त समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग निरन्तर अपनी स्वार्थ पूर्ति में संलग्न रहा है। इवान इलिच के विचारानुसार विद्यालय एक सामाजिक समस्या बन गया है और विद्यालयों का सबसे हेय पक्ष यह है कि वे सहपाठियों को एक ही कमरे में घेरे रहते हैं उन पर गणित, नागरिक शास्त्र और भाषा अभ्यास की एक जैसी परिचर्या थोपी जाती है। यह शिक्षा प्रणाली बालक की क्षमता और उसके बचपन को कैद करने का कार्य ही करती है। संसार के अधिकांश लोग, अपने बच्चे के लिए इसी यांत्रिक आधुनिक विद्यालयों और शिक्षा प्रणाली की वकालत करते हैं। इस प्रकार समाज के लोग अपने बच्चों के लिए या तो बचपन चाहते ही नहीं है अथवा उन्हें मिलता नहीं है। इन विद्यालयों द्वारा बचपन को बोझ मान उसे शीघ्रता से गुजरने के लिए बाध्य किया जा रहा है।

विद्यालयों में बालक अपने ही समाज के द्वारा थोपी गई भूमिका के दरम्यान अमानवीय अन्तर्द्वन्द्व की प्रक्रिया के बजाए उसके शिक्षण में, विद्या प्राप्ति की बजाए कक्षा या दर्जा पास करने में, क्षमता हासिल करने की अपेक्षा डिग्री या सर्टिफिकेट प्राप्ति में कुछ नया कर पाने की योग्यता विकास की बजाए वाक्चातुर्य हासिल करने में, जीवन मूल्यों की बजाए नौकरी प्राप्त करने में, स्वस्थ जीवन जीने की कला विकसित करने की बजाए डॉक्टरी चिकित्सा में, सामुदायिक जीवन संवारने की बजाए समाज सेवा में, राष्ट्रीय सुरक्षा की बजाए सैन्य सन्तुलन में और उत्पादक कार्य करने की बजाए अन्धाधुन्ध औद्योगीकरण में विश्वास करती है और इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति इस प्रक्रिया के द्वारा हो रही है। वांछित शिक्षा प्रणाली वह है जो प्रत्येक बालक को, उसकी क्षमता को स्वतंत्रतापूर्वक दर्शाने का अवसर प्रदान करें और बालक सीखने में आनन्द की अनुभूति करें। वर्तमान विद्यालय में क्षमता विकास, स्वतंत्रता और आनन्द तीनों ही नहीं है। विद्यालय चाहे किसी भी प्रकार के हों- सरकारी अथवा गैर सरकारी, किसी भी क्षेत्र में स्थित हो- सरकारी अथवा गैर सरकारी, किसी भी क्षेत्र में स्थित हो- गाँव, कस्बा, शहर अथवा महानगर, सुविधायुक्त या सुविधाविहीन मुख्य रूप से रहने और परीक्षा पास करने के लिए ही प्रेरित करते हैं। बालक पर इसके लिए डर का वातावरण हावी किया जाता है। वह उत्साहपूर्वक कोई कार्य नहीं करता है। बल्कि भय ही उसका परीक्षा पास करने हेतु प्रेरक रहता है।

हम किसी भी विद्यालय के वातावरण को ले लें, प्राथमिक हो या माध्यमिक वहाँ डर और बन्धन नहीं देखने को मिलता है। विद्यालय की व्यवस्था, आदेशों और निर्देशों से संचालित हैं। शिक्षक बालक के प्रति उत्साहहीन, संवेदनहीन और चिन्ताहीन हैं। यहाँ हर मानसिक आयु वाले बालक के लिए एक जैसा ही निश्चित पाठ्यक्रम है, जो सभी के लिए एक तरह से अनिवार्य है। शिक्षण प्रक्रिया रहने या घोंटने पर बल देने वाली है। विद्यालय वातावरण भययुक्त, बोझिल और नीरस है। इसमें आनन्द गायब है। बालक मजबूरी में विद्यालय आते हैं और निश्चित एक जैसी प्रक्रिया से आपस में धक्का-मुक्की करते हुए गुजरते हैं, छुट्टी की घण्टी सुनते ही, इस प्रकार विद्यालय से बाहर भागते हैं जैसे अपनी सजा पूरी कर कैद से भाग रहे हैं। जॉन हाल्ट ने विद्यालय के विषय में कहा है कि वहाँ भय, भ्रम और ऊब का वातावरण था। शिक्षकों में न उत्साह था, न बालक के प्रति संवेदना। बालक मात्र नियमित उपस्थितियों और कक्षाएँ केवल हाजिरी का हुजूम, नीरस, निःस्पन्द और निष्प्राण था वह स्कूल, जिसमें मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ कृति बालक और बालिका जीवन निर्माण के संस्कार और व्यवहार सीखने जाते थे।

गिजुभाई ने भी विद्यालयों के इस डर युक्त वातावरण को महसूस किया और अपनी पुस्तक दिवा स्वप्न में लिखा कि स्कूल एक प्रकार से भय की संस्था बन गया है। वहाँ तरह-तरह के भय या डर हैं, जैसे घण्टी का डर, प्रवेश का डर, शिक्षक का डर, व्यवस्था का डर, पढ़ाई का डर और परीक्षा का डर। गिजुभाई ने स्कूल का जो प्रचलित प्रत्यय था या स्कूल जिस अवधारणा के रूप में समाज में विद्यमान हैं सबसे पहले उस स्वरूप में हस्तक्षेप किया। आज हम आनन्ददायी शिक्षा, स्कूल फ्रेंडली या चाईल्ड फ्रेंडली शिक्षा और बाल केन्द्रित शिक्षा जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। परन्तु हमारे विद्यालय मे इसका अंशमात्र भी देखने को नहीं मिलता। गिजुभाई ने यह फ्रेंडलीनैस, सहचर्या कैसे कायम होती है, हम स्कूल मित्र या बाल-मित्र कैसे बन सकते हैं इसका भी एक आदर्श या मॉडल रचा। उनका मानना है कि बालकों को डरना, मारना-पिटना, डाँटना-डपटना आदि कार्य नहीं करने चाहिए तथा इन पाशविक वृत्तियों से बचना चाहिए ताकि उनमें आत्मसम्मान की भावना जगे।

विद्यालय के भययुक्त, बन्धनयुक्त और बोझिल वातावरण को खत्म कर ही हम बालक का सही विकास कर सकते हैं। इस भययुक्त वातावरण की विद्यालय रूपी भयशाला को आनन्दशाला में बदलने के लिए विद्यालय को बालकों की क्रीड़ास्थली बनाना होगा जहाँ बालक स्वतंत्रता और आनन्दपूर्वक सीखने की और बढ़े। इसके लिए विद्यालय का अपना एक ऐसा शिक्षण-शास्त्र हो जिसमें सीखना और खेलना अलग-अलग न हो सीखना और सिखाना अलग-अलग न हो। बालक पास-फेल के बजाए सीखने और क्षमता विकसित करने का प्रयास करें। बालक हँसते हुए विद्यालय आए और गुनगुनाते हुए सीखें। अगले दिन पुनः विद्यालय नए उत्साह जोश, उमंग और कुछ नया करने की ललक से आए। विद्यालय बालक का स्वागत करें। शिक्षक-शिक्षिका मुस्कुराते हुए बालकों की शिक्षा हेतु प्रयोग, चिन्तन और क्रियाएँ करें और अनुभूति सहित शिक्षित कर योग्यता का विकास करें। तभी गिजुभाई के दिवास्वप्न का शिक्षा का प्रयोग सार्थक सिद्ध हो सकेगा और हमारे विद्यालयों का भययुक्त वातावरण, आनन्दशाला में परिवर्तित कर सकेगा। संगमरमर और काँच के आलीशान भवन, सुविधाओं से भरपूर कक्षा-कक्ष, वातानुकुलित कमरे शिक्षा को सार्थक नहीं बना सकते अपितु विद्यालयों को बालकों की आनन्दशाला बनाकर सार्थक शिक्षा के लिए शिक्षा में प्रयोग या नवाचार करते हुए चुनौतियों को स्वीकारने से ही यह परिवर्तन संभव हो सकता है। ❑

(व्याख्याता, हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,हटूण्डी,अजमेर)

यह सर्वविदित है कि स्कूल ही वह जगह है जहाँ बच्चे का समुचित विकास संभव है। पुस्तकों के अध्ययन के साथ-साथ यह भी आवश्यक है। उनकी शारीरिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाए क्योंकि 'एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है' परन्तु जो विद्यालय स्वयं इतने सीमित क्षेत्र में खुले हों, जहाँ 'प्रार्थना' के लिए छत पर खड़ा होना पड़े वहाँ खेल के मैदान उपलब्ध कैसे हो सकते हैं? जहाँ एक ओर पब्लिक स्कूल अभिभावकों के लिए 'स्टेटस सिंबल' बन चुके हैं, वहीं घोर व्यवसायीकरण के चलते, स्कूल सिर्फ किताबी शिक्षा देकर, अपने कर्त्तव्यों से इतिश्री कर लेते हैं। पर यहाँ समस्या गहरी इसलिए हो जाती है, कि 'सरकारी स्कूलों' का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है।

किस दिशा में जाएँ अभिभावक

❑ डॉ. ऋतु सारस्वत

शिक्षा हर बच्चे का मौलिक अधिकार है और इस अधिकार का सरंक्षण करना देश का दायित्व है पर बीते दशकों में ऐसी कौनसी चुंबकीय शक्ति निजी स्कूलों ने उत्पन्न कर ली है कि हर अभिभावक हजारों रुपए की फीस चुका कर भी उस ओर भाग रहा है? क्या यह निजी स्कूलों की कमतरी है? इस ओर एक गहन विश्लेषण की आवश्यकता है।

आम जन से लेकर खास वर्ग तक, सभी की आँखों में एक ही स्वप्न पलता है कि उनका बच्चा बेहतर से बेहतर शिक्षा पाए। पर इस 'बेहतर' के मापदण्ड क्या हैं? सर्वांगीण विकास या फिर किताबी ज्ञान या इन सबसे परे 'अंग्रेजी ज्ञान'। आमतौर पर इस देश में पढ़ा-लिखा उसे ही माना जाता है कि जो फर्राटेदार अंग्रेजी बोल सके इसलिए स्वाभाविक तौर पर अभिभावकों का झुकाव 'पब्लिक स्कूल' की ओर ही होता है, विशेषकर मध्यमवर्ग, जो जीवन पर्यन्त इस चक्र में फँसा रहता है कि कैसे अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया जाए, कैसे समाज में उच्च प्रस्थिति (स्टेटस) को पाया जाए? ऐसी ही जद्दोजहद में वह हर उस वस्तु को अपनाना चाहता है कि समाज में 'आधुनिकता' की परिचायक है चाहे फिर उसके लिए उसे कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। ऐसी ही आधुनिकता का पर्याय बन चुके हैं आज के 'पब्लिक स्कूल'। पब्लिक स्कूल, आज हर नगर में कुकुरमुत्ते की तरह फैल गए हैं। उच्चतम न्यायालय और शिक्षा प्रशासन के निर्देशों के बावजूद शैक्षिक मानकों की यह स्कूल खुले आम अनदेखी करते हैं। इन स्कूलों में न तो पर्याप्त शिक्षक हैं और न ही बुनियादी सुविधाएँ, परन्तु येन-केन प्रकारेण, यह शिक्षा विभाग से मान्यता प्राप्त कर ही लेते हैं। निजी स्कूल अपना अलग से ही पाठ्यक्रम चलाते हैं, जिससे बच्चों पर पढ़ाई का अनावश्यक बोझ लद जाता है। इन स्कूलों में प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम में ही 10-11 किताबें शामिल हैं, वहीं माध्यमिक स्तर पर आते-आते 14-18 किताबें शामिल हो जाती हैं। इससे नन्हें बच्चों का बचपन किताबों के बोझ तले दब जाता है। उच्चतम न्यायालय के आदेशानुसार स्कूल भवन के निर्माण के लिए न्यूनतम क्षेत्रफल 0.4 हेक्टेयर, भवन में पर्याप्त रोशनी की व्यवस्था, वाहन पार्किंग

की समुचित व्यवस्था, मुख्य मार्ग की चौड़ाई 12 मीटर और भवन की छत आरसीसी की बनी होनी चाहिए। स्कूल में आग पर काबू पाने के इंतजाम होने चाहिए। साथ ही विद्यालय भवन की छत या दीवार में दरार नहीं होनी चाहिए। परन्तु सच तो यह है कि ऐसे स्कूलों की संख्या एक-दो प्रतिशत ही होगी जो मानकों पर खरे उतरते हैं।

यह सर्वविदित है कि स्कूल ही वह जगह है जहाँ बच्चे का समुचित विकास संभव है। पुस्तकों के अध्ययन के साथ-साथ यह भी आवश्यक है। उनकी शारीरिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाए क्योंकि 'एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है' परन्तु जो विद्यालय स्वयं इतने सीमित क्षेत्र में खुले हों, जहाँ 'प्रार्थना' के लिए छत पर खड़ा होना पड़े वहाँ खेल के मैदान उपलब्ध कैसे हो सकते हैं? जहाँ एक ओर पब्लिक स्कूल अभिभावकों के लिए 'स्टेटस सिंबल' बन चुके हैं, वहीं घोर व्यवसायीकरण के चलते, स्कूल सिर्फ किताबी शिक्षा देकर, अपने कर्त्तव्यों से इतिश्री कर लेते हैं। पर यहाँ समस्या गहरी इसलिए हो जाती है, कि 'सरकारी स्कूलों' का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। स्वयं सेवी संस्था 'प्रथम' के ताजा सर्वेक्षण के मुताबिक पाँचवी कक्षा में पढ़ने वाले पचास प्रतिशत से ज्यादा बच्चे दूसरी कक्षा की किताबें भी नहीं पढ़ पाते। दो तिहाई बच्चों के लिए साधारण जोड़-घटाव व गुणा-भाग के प्रश्न हल करना ही मुश्किल है। शिक्षा की गुणवत्ता के मसले पर बनी क्रेमर-मुरलीधरन समिति ने अपने अध्ययन में सरकारी स्कूलों में शिक्षकों की गैर हाजिरी और शिक्षण-कार्य में दिलचस्पी नहीं लेने को इसका बड़ा कारण माना था। सरकारी स्कूल के परीक्षा परिणाम, अभिभावकों को भयभीत करते हैं ऐसी स्थिति में अभिभावकों को पब्लिक (निजी) स्कूल ही बेहतर विकल्प दिखाई देते हैं पर, अभिावकों के लिए यह जानना बेहद जरूरी है कि वहाँ किताबों के बोझ तले उनका बच्चा अपना बचपन खो देता है जिससे आगे चलकर, बच्चे का विकास संतुलित नहीं रहता।

अब यहाँ यक्ष प्रश्न है कि आखिर अभिभावक क्या करें? अभिभावकों को अपने बच्चों के लिए ऐसे स्कूलों के चयन करने की आवश्यकता है जहाँ पढ़ने-लिखने के साथ-साथ बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास पर भी ध्यान दिया जाए और जहाँ का पाठ्यक्रम और शिक्षण की विधियाँ बच्चों के लिए सहज रूप से बोधगम्य हों। वहीं प्रत्येक राज्य के शिक्षा प्रशासन का दायित्व बनता है कि वह निजी स्कूल एवं सरकारी स्कूलों को उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित किए गए मानकों की पालना करवाए और अगर ऐसा न हो, तो उस विद्यालय विशेष को मान्यता प्रदान न करे। सरकारी स्कूल में शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए भगीरथ प्रयास की आवश्यकता है नहीं तो धीरे-धीरे सरकारी स्कूल सिर्फ खानापूर्ति के रूप में ही अपना अस्तित्त्व कायम रख पाएँगे, जब नवोदय विद्यालय और केन्द्रीय विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थी, अपनी एक अलग पहचान बना रहे हैं जो राज्य स्तर पर संचालित होने वाले सरकारी स्कूल ऐसा क्यों नहीं कर सकते? आवश्यकता है सिर्फ उचित प्रबंधन की।

सवाल यह नहीं है कि निजी स्कूल अच्छे हैं कि सरकारी स्कूल, सवाल तो यह है कि अपनी मेहनत का आधा अंश जो अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पर खर्च कर देते हैं, वे बच्चे क्या पा रहे हैं? सिर्फ भाषा और स्टेटस सिंबल की चाह से मुक्ति पा कर, अपने नौनिहालों के लिए ऐसी शिक्षा की पहल कीजिए जो उन्हें न केवल आत्मनिर्भर बनाए बल्कि एक अच्छा इंसान भी। यदि जीवन की परीक्षा में सिर्फ पाठ्यक्रम की किताबें ही काम आतीं तो शायद आज सभी सुखों की सरिता में बह रहे होते। ❑

(एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, पुष्कर, अजमेर)

शिक्षा एक व्यापक अवधारणा है इसके बहुविध पक्ष है आज विद्यालयी शिक्षा के संकुचित स्वरूप का कारण अनावश्यक राजनैतिक हस्तक्षेप और तुष्टिकरण है। वैचारिक स्वतन्त्रता अकादमिक संस्थाओं की आवश्यकता है परन्तु वैचारिक स्वतन्त्रता की सक्षमता की नींव विद्यालयी शिक्षा है। जिस व्यवस्था में शारीरिक अनुशासन और संयम न हो, स्वयं एवं अन्यों के प्राणों के प्रति सम्मान न हो, मन में प्रेम, उदारता एवं सहिष्णुता का बर्ताव न हो, अपने दिव्य आत्म स्वरूप का बोध न हो। जो जीवन को इस भौतिक परिवेश से परे देखने का साहस न करता हो वहाँ मनुष्य अपने अस्तित्व की सार्थकता और दिव्यता को प्राप्त नहीं कर सकता।

श्री अरविन्द : राष्ट्रीय शिक्षा की अवधारणा

❑ डॉ. रेखा यादव

किसी भी जीव का अस्तित्त्व उसके एवं उसके बाह्य वातावरण के साथ अन्तर्क्रिया में विकसित होता है। जीवन के संघर्ष में आवश्यकताओं की सन्तुष्टि बाहरी वातावरण से होती है तथा अपनी स्वाभाविक क्षमताओं और स्वतन्त्रता का अनुभव आन्तरिक बोध से होता है। आवश्यकताओं की संतुष्टि में मनुष्य ने अन्य प्राणियों की तुलना में एक परिष्कृत एवं व्यवस्थित व्यवस्था को विकसित किया है जो उसकी सभ्यता एवं संस्कृति की कहानी प्रकट करती है। सांस्कृतिक पक्ष मनुष्य के आदर्शों से सम्बन्धित है इसलिये यह पक्ष भौतिक विकास से भिन्न गुणवत्तापूर्ण जीवन का भी मानक और परिदृश्य विकसित करता है। हमारी परम्परा में शिक्षा का प्रयोजन मनुष्य की मनोदैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति से ज्यादा इन आवश्यकताओं के परिष्कार से अधिक सम्बन्धित रहा है। मानवीय अस्तित्त्व के अन्नमय कोष से विज्ञानमय कोष तक हमारी शिक्षा व्यवस्था की उपलब्धियाँ रही परन्तु बाहरी प्रभावों और आधुनिक शिक्षा ने हमें अन्नमय और प्राणमय कोष के स्तर तक को ही जीवन मानने का सिद्धान्त दिया। शारीरिक क्षुधाओं की पूर्ति और प्राण की सुरक्षा मानने में ही आनन्द का अनुभव आज के विद्यालयों की शिक्षा है। परिणामस्वरूप बढ़ता हुआ उपभोग का स्तर और संघर्ष-अवसाद-हिंसा आज मनुष्य अस्तित्त्व का उत्पाद बन गया है।

आधुनिक विचारकों ने इस त्राण से मुक्ति के लिए शैक्षिक सिद्धान्तों और उसके व्यावहारिक मार्गों पर विवेक सम्मत विचार-विमर्श किया है। मानवीय प्रेम-आनन्द-मुक्ति गैर धार्मिक विचारकों के भी लक्ष्य रहे हैं। जे. कृष्णामूर्ति जैसे विचारक राष्ट्र-समाज-संस्कृति जैसी सीमाओं का भी अतिक्रमण करते दिखाई देते हैं परन्तु उनके दर्शन में जितनी सैद्धान्तिक गहराई है उस अनुपात में व्यावहारिक स्तर की कार्ययोजना बनाने में कठिनाई का भी अनुभव होता है।

विद्यालय विहीन शिक्षा की अवधारणा वर्तमान में विद्यालयों के काम-काज के आकलन पर आकर्षक लगती है, परन्तु जब लक्ष्य कुछ विशेष वर्गों एवं सीमित स्तर पर शिक्षा उपलब्ध कराने का न हो बल्कि समूचे राष्ट्र के लिये आदर्शों की उपलब्धि करवाने का हो तो श्री अरविन्द की राष्ट्रीय शिक्षा की अवधारणा अधिक प्रासंगिक लगती है। श्री अरविन्द के शैक्षिक दर्शन की पृष्ठभूमि में भारत की राजैनतिक परतन्त्रता के साथ मानसिक दासता भी मुख्यत: विद्यमान है। श्री अरविन्द और महात्मा गाँधी दोनों का विदेश से लौटकर यह समान अनुभव रहा कि भारत का बौद्धिक वर्ग जिसे अपने सनातन मूल्यों का वाहक होना चाहिए, वह अंग्रेजों से ज्यादा अंग्रेज बन चुका है। श्री अरविन्द और रविन्द्रनाथ ठाकुर भारत के बौद्धिक-सांस्कृतिक रूप से उन्नत उस बंगाल प्रान्त से आते थे जिसने शिक्षा को मानवीय मुक्ति का अस्त्र मानने वाले अनेक शिक्षाविद् दिये। इन शिक्षाविदों ने पश्चिमी समाज के आधुनिक एवं साहसी मूल्यों की भरपूर प्रशंसा की परन्तु भारतीय मूल्यों की सार्वजनीनता और समृद्धता का भी अनुभव किया। स्वामी विवेकानन्द इन्हीं मूल्यों का परचम पश्चिम में फहराकर आये थे जिसकी प्रेरणा श्री अरविन्द से लेकर अन्य राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक महानुभावों के हृदय में विद्यमान थी।

पश्चिमी शिक्षा के आधुनिक मूल्यों का अध्ययन करने वाले हमारे महापुरुषों के मन में राष्ट्रीय शिक्षा की ऐसी परिकल्पना थी जिससें भारतीय जन मानस प्रबुद्ध बने, अन्धविश्वास एवं कर्मकाण्ड की कट्टरता से बाहर निकलकर भारतीय अध्यात्म के उन मूल्यों की पहचान कर आत्मसात करे जो मानवीय अस्तित्त्व की सर्वोच्च उत्कृष्टता है। आधुनिक भारत में स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्त्व में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की जो अलख जगाई गई उसे श्री अरविन्द ने अपनी आध्यत्मिक साधना में सैद्धान्तिक रूप दिया। सर्वांग शिक्षा की श्री अरविन्द की अवधारणा मनुष्य के समग्र विकास की योजना है जिसमें शरीर, प्राण, मन और आत्मा के क्रमिक विकास के स्तर हैं। महात्मा गाँधी और ठाकुर ने भी शिक्षा में माननीय अस्तित्त्व के विभिन्न घटकों के सन्तुलन एवं समन्वय पर बल दिया परन्तु महात्मा गाँधी और रविन्द्रनाथ ठाकुर ने क्रमश: पारम्परिक एवं आधुनिक तौर-तरीकों से जहाँ मनुष्य के प्रेमपूर्ण और उदात्त स्वभाव पर प्रमुख बल दिया वहीं श्री अरविन्द ने मनुष्य एवं सम्पूर्ण संसार

के दिव्य जीवन में रूपान्तरित होने की परिकल्पना और उसका योग आधारित समाधान दिया।

शिक्षा एक व्यापक अवधारणा है इसके बहुविध पक्ष है आज विद्यालयी शिक्षा के संकुचित स्वरूप का कारण अनावश्यक राजनैतिक हस्तक्षेप और तुष्टिकरण है। वैचारिक स्वतन्त्रता अकादमिक संस्थाओं की आवश्यकता है परन्तु वैचारिक स्वतन्त्रता की सक्षमता की नींव विद्यालयी शिक्षा है। जिस व्यवस्था में शारीरिक अनुशासन और संयम न हो, स्वयं एवं अन्यों के प्राणों के प्रति सम्मान न हो, मन में प्रेम, उदारता एवं सहिष्णुता का बर्ताव न हो, अपने दिव्य आत्म स्वरूप का बोध न हो। जो जीवन को इस भौतिक परिवेश से परे देखने का साहस न करता हो वहाँ मनुष्य अपने अस्तित्व की सार्थकता और दिव्यता को प्राप्त नहीं कर सकता। पश्चिमी निरीश्वरवादी-अस्तित्त्ववादियों ने अवसाद, दुश्चिन्ता के साथ ही जीना प्रामाणिक माना। भौतिकतावादी विचारकों ने बुद्धि एवं तर्क के आधार पर शुद्ध नैतिक समाज बनाने का आग्रह किया। वैज्ञानिक समाजवाद की अवधारणा हमारी शिक्षा व्यवस्था में प्रमुखता से उभरी जिसमें परिवार एवं राष्ट्र जैसी अवधारणाओं का तिरस्कार किया गया। परिणामस्वरूप किसी का बौद्धिकता में अतिरेक विकास हुआ तो किसी को इस बौद्धिकता में जीवन की निराशा नजर आई। मनुष्य जीवन में बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय आवश्यक है। श्री अरविन्द की शिक्षा योजना इस दृष्टि से अद्वितीय है। श्री अरविन्द का कहना समीचीन जान पड़ता है कि भौतिक विश्व में विज्ञान ने हमें उपलब्धियों के शिखर पर पहुँचा दिया है। अब इसके आगे आध्यात्मिक छलांग अतिमानस तक लगानी है। इसकी तैयारी के लिए सर्वांग शिक्षा योजना में वैयक्तिक उन्नति के साथ सामुदायिक उन्नति का भी लक्ष्य है। राष्ट्रवाद के साथ अन्तरराष्ट्रीयतावाद की पूरक अवधारणा है। वैसे तो शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है तथा जीवन का प्रत्येक अनुभव इसे समृद्ध करता है। परन्तु अपने अनुभवों का पूर्ण बोध अपनी शक्तियों के समुचित विकास से ही सम्भव है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों में शिक्षा पर जो विचार विमर्श हुआ उसमें गोपाल कृष्ण गोखले जैसे चिन्तक शिक्षा के लिए राज्य से स्वतन्त्र शिक्षा व्यवस्था की माँग करते थे परन्तु गरम दल के क्रान्तिकारी नेता किसी भी रूप में इसके राष्ट्रीय स्वरूप को नेपथ्य मे रखने के पक्ष में नहीं थे। श्री अरविन्द विशेष रूप से शिक्षा को राजनैतिक कार्य योजना का महत्त्वपूर्ण भाग मानते थे क्योंकि एक उच्च विकसित राज्य के प्रत्येक बालक का शिक्षा प्राप्त करना और अपनी शक्तियों का सम्पूर्ण विकास करना ही वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन है।

मनुष्य को अपने परिवार, राज्य एवं राष्ट्र की सीमाओं से परे जाने से पहले पूर्ण आन्तरिक विकास की आवश्यकता है। उनका कहना था कि राष्ट्रीय शिक्षा में अतीत का बोध, वर्तमान का पूर्ण सदुपयोग एवं भविष्य की शुभेच्छा आवश्यक है। शिक्षा सिर्फ तात्कालिक लक्ष्यों की पूर्ति करने वाली नहीं होती। वे भारत के युवाओं को अपनी सांस्कृतिक विरासत के गौरव बोध के प्रति जाग्रत और सम्पूर्ण वैश्विक समाज के सहयोगी दिव्य प्रज्ञा पुरुष बनने का लक्ष्य देते हैं। श्री अरविन्द का स्पष्ट मानना था कि अध्यात्म हमारी विरासत का गौरव बोध है जिसमें जीवन की सार्थकता और उसके वृहत्तर उद्देश्यों को समझा जा सकता है। शिक्षा हमें आन्तरिक विकास का पूर्ण अवसर एवं उपलब्धि प्रदान करे इसके लिए संसार के आधार स्वरूप परमसत्ता से ऐक्यता का अनुभव आवश्यक है। श्री अरविन्द आदर्शवादी एवं आध्यात्मवादी विचारक है। प्रकृतिवादी शैक्षिक सिद्धान्तों में मानवीय स्वतन्त्रता का सीमाओं में बोध है जबकि आध्यात्मवाद में स्वतन्त्रता का पूर्ण बोध है। प्रकृतिवादी शैक्षिक सिद्धान्तों में अपने प्रति स्वीकृति अन्यों के प्रति असहमति है जबकि श्री अरविन्द की आध्यात्मिक योजना में प्रकृतिवादी शैक्षिक सिद्धान्तों को भी समन्वित किया जा सकता है और मानवीय ज्ञान के असीमित विस्तार का आशावाद एवं गौरव बोध भी है। श्री अरविन्द की सर्वांग शिक्षा में शारीरिक शिक्षा को आवश्यक माना क्योंकि स्वस्थ शरीर से विद्यार्थी अपनी क्षमताओं का विकास करने में समक्ष होता है। शारीरिक विकास के साथ विद्यार्थी की प्राण शक्ति जिसके उपकरण इन्द्रियाँ व मन है उसके प्रशिक्षण की आवश्यकता पर भी बल देते हैं जिससे मनुष्य अपने ज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों से सम्बन्धित उपकरणों का बोध एवं सदुपयोग करना सीख सकता है। अपनी क्षमताओं से परिचित होकर मन के प्रशिक्षण की आवश्यकता है जो विद्यार्थी को अच्छी स्मृति, कल्पना के साथ निर्णयात्मक सूझ-बूझ के योग्य बनाती है। मन जो बौद्धिक प्रशिक्षण देता है उसके साथ अपनी अतिन्द्रिय क्षमताओं से परिचित कराने के लिए श्री अरविन्द साइकिक स्तर के प्रशिक्षण को भी आवश्यक मानते हैं। अपनी साधारण बुद्धि और मन से गहरी अतीन्द्रिय शक्तियों की पहचान कर ही विद्यार्थी सर्वोच्च प्रशिक्षण जो अतिमानस की ओर ले जाता है उसके योग्य बनते हैं।

उपर्युक्त प्रशिक्षणों के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता एवं उदारता के साथ अनुशासन एवं शिक्षकों के लिए भी अपने कर्त्तव्यों के प्रति निष्ठा, समर्पण और दिव्य प्रेम को वे विद्यार्थी के विकास के लिए आवश्यक मानते थे।

यद्यपि श्री अरविन्द्र की सर्वांग योजना हमारे समाज की बहुलता और विषमता को देखते हुए कठिन लग सकती हैं परन्तु मनुष्य का एक पक्षीय विकास शिक्षा का उद्देश्य भी नहीं हो सकता ना ही विद्यालयविहीन शिक्षा में हम अपने सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये कार्य योजना बना सकते हैं। श्री अरविन्द की शिक्षा योजना भारत के लिए ही नहीं सम्पूर्ण विश्व के लिए है परन्तु श्री अरविन्द अपने दिव्य जीवन की स्वप्न पूर्ति भारतीय नेतृत्त्व में सम्भव मानते थे क्योंकि परमसत्ता से ऐक्यता के अनुभव की यह दिव्य भूमि है। अध्यात्म को संकुचित मजहबी अवधारणाओं से देखकर हम शिक्षा और मनुष्य दोनों के साथ अन्याय तो नहीं कर रहे आज यह विचार करने एवं समझने की महती आवश्यकता है।❑

(सह आचार्य दर्शनशास्त्र, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर।)

पंडित मदनमोहन मालवीय और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने जीवन में विश्वविद्यालय जैसी संस्था को निर्मित किया। इन लोगों के जीवन में ही इन विश्वविद्यालयों को प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। इन दोनों विश्वविद्यालयों- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और विश्व भारती ने गुलाम देश में शिक्षा के क्षेत्र में वस्तुतः क्रांति ला दी। दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद के चिंतन के आलोक में बहुत सी संस्थाएँ निर्मित हुईं। वैश्विक धरातल पर गत शताब्दी के भारतीय चिंतकों के मॉडल वैश्विक स्तर पर स्वीकृत नहीं हुए। भारत में इनकी चर्चा होती है तथा विचारधारा केंद्रित संस्थाएँ प्रमुखता से इनके विचारों का अनुसरण करती हैं। उनमें भी सर्व समावेशिता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

गिजुभाई का शिक्षा दर्शन

❑ प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

ध्येयनिष्ठ, बालशिक्षा के लिए समर्पित, प्रयोगधर्मी और विचारशील शिक्षाविद् गिजुभाई के नाम से शिक्षा क्षेत्र के लोग भी सामान्य ढँग से परिचित हैं। विश्व में शिक्षा के अनुप्रयोगों और चिंतन के लिए जो लोग जाने जाते हैं उनमें गिजुभाई का नाम बहुत बाद में लिया जाता है या नहीं लिया जाता है। ऐसा लगता है कि दार्शनिक धरातल पर उनकी सोच को प्रतिष्ठा नहीं मिली। शिक्षाशास्त्र की पुस्तकों में जिन भारतीय शिक्षाविदों की चर्चा होती है उनमें एनीबेसेंट, दयानन्द सरस्वती, पं. मदनमोहन मालवीय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी, श्रद्धानंद, महर्षि अरविंद, विनोबा भावे, राधाकृष्णन, डॉ. जाकिर हुसैन आदि का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। प्राय: इन विद्वानों की शिक्षा शास्त्र पर कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं है। इनके व्याख्यानों में शिक्षा संबंधी चर्चा है। इनके व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व से शिक्षा के सूत्र तलाशे जाते हैं। इन महापुरुषों की बातों को प्रत्यक्षत: ध्यान में रखकर कोई मॉडल भी तैयार नहीं किया गया। पंडित मदनमोहन मालवीय और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने जीवन में विश्वविद्यालय जैसी संस्था को निर्मित किया। इन लोगों के जीवन में ही इन विश्वविद्यालयों को प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। इन दोनों विश्वविद्यालयों- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और विश्व भारती ने गुलाम देश में शिक्षा के क्षेत्र में वस्तुत: क्रांति ला दी। दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद के चिंतन के आलोक में बहुत सी संस्थाएँ निर्मित हुईं। वैश्विक धरातल पर गत शताब्दी के भारतीय चिंतकों के मॉडल वैश्विक स्तर पर स्वीकृत नहीं हुए। भारत में इनकी चर्चा होती है तथा विचारधारा केंद्रित संस्थाएँ प्रमुखता से इनके विचारों का अनुसरण करती हैं। उनमें भी सर्व समावेशिता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

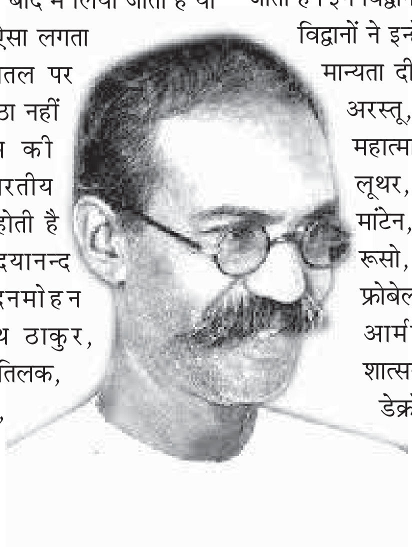

भारतीय शिक्षा क्षेत्र में अवश्य पाश्चात्य विद्वानों की धारणाओं का उल्लेख प्रमुखता से किया जाता है। इन विद्वानों की सूची लम्बी है। भारतीय विद्वानों ने इन्हें वैश्विक आचार्य के रूप में मान्यता दी है। इनमें प्रमुख हैं- प्लेटो, अरस्तू, सुकरात, महात्मा मोसेस, महात्मा सोलन, कन्फ्यूशियस, मार्टिन लूथर, रॉवेल, रिचर्ड मुलकास्टर, मांटेन, फ्रांसिस बेकन, कॉमेनियस, रूसो, लॉक, पेस्टॉलॉजी, हरबार्ट, फ्रोबेल, हरबर्ट स्पेन्सर, डॉ. मोंटेसरी, आर्मस्ट्रांग, हेलेन पार्कहर्स्ट, शात्सकी, वाशवर्न, विलियम बर्ट, डेक्रोले, मैक्समूलर आदि। इनके विचारों की चर्चा के क्रम में ऐसा लगता है कि जिन विचारों को इन्होंने शिक्षा के लिए उपयोगी बताया, उन्हीं से परिचालित शिक्षा ही विश्व में परिवर्तन ला सकती है। भारतीयों का चिंतन भारत के लिए है, इसकी वैश्विक धरातल पर कोई उपयोगिता नहीं है। आधुनिक युग के देशी चिंतकों को दुनिया कितना महत्त्व देती है, इस बात से भारतीय शिक्षक और शिक्षाविद् परिचित हैं। एक विशाल भू-भाग और बड़ी जनसंख्या के शारीरिक, मानसिक के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति के लिए किए गए भारतीय मनीषियों के विचार भारत में ही प्रतिष्ठित नहीं हो सके।

गिजुभाई, डॉ. मोंटेसरी के प्रयोगों से बेहद प्रभावित थे। उसको आधार रूप में स्वीकार किया। वकालत छोड़कर उन्होंने प्रयोगधर्मी विद्यामंदिरों का संचालन किया। इनका जन्म 15 नवम्बर, 1885 को गुजरात में हुआ था। इन्हें बहुत कम उम्र मिली। 23 जून, 1939 को स्वर्गवास हो गया। मोंटेसरी पद्धति का इन्होंने भरपूर उपयोग किया।

भारतीय संदर्भों में इस पद्धति को जोड़ना और भारतीय विद्यार्थियों पर उन प्रयोगों को दुहराने में इन्हें सफलता मिली। इन्होंने शिक्षा के अनुप्रयोगों के लिए भावनगर की दक्षिणामूर्ति को अपनी कर्मस्थली बनाया। बच्चों के बहुविध विकास के लिए वहाँ के बच्चों का बहुत करीब से निरीक्षण किया ओर संस्था का परिचालन सूक्ष्म बालमनोविज्ञान के धरातल पर किया। बच्चों की मनोदशा को पढ़ने-समझने का उनका अपना तरीका था। 'गिजुभाई रत्नावली' सर्जना प्रकाशन, बीकानेर से प्रकाशित है। 'मोंटेसरी पद्धति' स्वतंत्र खण्ड है। यह 'गिजुभाई रत्नावली' का 10वाँ खण्ड है। डॉ. मेरिया मोंटेसरी के जीवन पर उन्होंने विस्तारपूर्वक लिखा है। इस पुस्तक में साधनों की मीमांसा, इंद्रियों का शिक्षण : व्यवहार, बुद्धि का शिक्षण, लेखन शिक्षण, वाचन शिक्षण, गणित का शिक्षण, चित्रकला, हाथ की मेहनत, प्रकृति शिक्षण, शारीरिक शिक्षण, बालकों का आहार, साधन-श्रेणी तथा क्रम, दैनिक कार्यक्रम जैसे अध्याय हैं। इन अध्यायों को पढ़कर हू-ब-हू भारतीय संदर्भ में लागू किया जाए, ये आवश्यक नहीं है। पर, इनका वाचन और चिंतन सोचने और प्रवृत्त होने के लिए बाध्य करता है। शारीरिक शिक्षण के क्रम में गिजुभाई ने मोंटेसरी के विचारों को विस्तारपूर्वक लिखा है। एक डॉक्टर की दृष्टि से शारीरिक विकास को समझते हुए क्रमशः बहुविध खेलों का वर्णन उपयोगी है। इस प्रकार के अन्य प्रयोग विद्यालयों में किये जा सकते हैं। बालकों के शरीर की संरचना को शरीर विज्ञान के आधार पर समझकर व्यायाम कराना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। गिजुभाई शारीरिक शिक्षण में डॉ. मोंटेसरी के संदर्भ में कहते हैं, 'छह तथा सात वर्ष के मध्य धड़ और नीचे के अवयवों के बीच 57 और 56 प्रतिशत का परिमाण रहता है। इस समय बालक ऊँचाई में अच्छी तरह से बढ़ता है। तीन वर्ष में बालक की ऊँचाई 105 सेमी होती है। इस समय धड़ और नीचे के अवयवों की लंबाई के अनुपात में काफी बड़ा अंतर आ जाता है। इस उम्र में हड्डियाँ कच्ची होती हैं तथा उनके विकास की क्रिया पूरी नहीं हुई होती। इस कारण पैरों पर अधिक वजन पड़ता है। यदि हम इन तमाम बातों पर ध्यान रखेंगे तो जो नियम चलने के बारे में हमारे लिए हैं, वही नियम हम बालक के लिए लागू नहीं करेंगे अर्थात् चलने की क्रिया में जो संतुलन हम निभाते हैं उनकी बालक से अपेक्षा नहीं रखेंगे। दुर्बल बालक को सीधा खड़े रखने से तथा चलाने से थकान आती है। पैरों की लम्बी हड्डियों पर शरीर का वजन आने से पैरों की हड्डियाँ बाँकी हो जाती हैं। ऐसे उदाहरण गरीब लोगों के बालकों में अधिक देखने को मिलते हैं, जिन्हें पर्याप्त पोषण नहीं मिलता।'

गिजुभाई ने डॉ. मेरिया मोंटेसरी पर लिखते हुए कुछ बिंदुओं की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया है। कुछ विषय उनके व्यक्तित्त्व से संबंधित हैं। मोंटेसरी के विशेष गुणों की चर्चा के पीछे शायद यह उद्देश्य रहा होगा कि अन्य शिक्षकों के लिए भी यह अनुकरणीय है। उन शिक्षकों के लिए तो विशेष रूप से जो वस्तुतः अपने शिक्षक जीवन में अपनी आँखों के सामने व्यक्तित्त्व को बनते-उभरते, प्रतिष्ठित होते देखना चाहते हैं। गिजुभाई ने मोंटेसरी के व्यक्तित्त्व के जिन बिंदुओं पर विशेष बल दिया है, उनमें हैं :

– जिस तन्मयता से इन्होंने (डॉ. मेरिया मोंटेसरी) अपना डॉक्टरी व्यवसाय किया था उसी तन्मयता, एकाग्रता, सावधानी एवं असाधारण उद्यम से इस कार्यक्षेत्र में अपना मन लगाया। प्रातः 8 बजे से शायं 7 बजे तक ये मंदबुद्धि बालकों को पढ़ाने के काम में संलग्न रहतीं। दिन भर दया योग्य बालकों के उद्धार हेतु अपनी बुद्धि एवं शक्ति का भरपूर उपयोग करने के बाद रात को एक विज्ञानवेता के रूप में अपने दिन भर के कार्यों की समालोचना करतीं, अपने अवलोकनों एवं कार्यों की संवीक्षा करतीं, अपने अवलोकनों से प्राप्त परिणामों का वर्गीकरण करतीं और इन विषयों से संबंधित जिन-जिन विद्वानों ने ग्रंथ रचना की थी, उनके तमाम ग्रंथों का गंभीरतापूर्वक अनुशीलन करतीं तथा यह पता लगातीं कि वे ग्रंथ उनके अपने प्रयोग में कहाँ, किस हद तक मददगार साबित हो सकते हैं।

– स्वभाव, शिक्षण एवं अनुभव से ये वैज्ञानिक थीं, इस कारण शालाओं की परिस्थिति का इन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया। लोम्ब्रोसो और सर्गी की पुस्तकें इन्हें पसंद आईं और इनकी इन पर गहरी छाप अंकित हुई। ये पुस्तकें इनके विचारों की निर्मिति में सहायक बनीं। प्रचलित शिक्षा पद्धति के दोष एवं अपूर्णताएँ इन्हें हस्तामलकवत् दिखाई दीं। आगे चलकर इन्होंने 'एडवांस्ड मोंटेसरी मैथड' वोल्यूम-1 के 'ए सर्वे ऑफ मॉर्डन एज्युकेशन' नामक अध्याय में तत्कालीन विद्यालयों का हू-ब-हू वर्णन किया है, जो शिक्षण से संबद्ध प्रत्येक व्यक्ति के लिए पठनीय है।

– पिछले चार एक वर्षों से प्रतिवर्ष डॉ. मोंटेसरी लंदन में चार माह का पाठ्यक्रम चलाती हैं और अपनी पद्धति का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक परिचय प्रदान करती हैं। साथ ही-साथ अपनी इस अभिनव शिक्षण-पद्धति के बारे में स्थान-स्थान पर व्याख्यान देती हैं, नई शालाएँ खोलती हैं और अपनी पद्धति का प्रचार-प्रसार करती हैं। गत वर्ष से डॉ. मेरिया मोंटेसरी के संपादकत्व में एम्सटर्डम से एक त्रैमासिक 'काल ऑफ एज्युकेशन' प्रकाशित होने लगा है, जो फ्रेंच, अंग्रेजी व इतावली भाषाओं में छपता है।

– इटली में मोंटेसरी – पद्धति का प्रशिक्षण देने के लिए एक शिक्षक प्रशिक्षणालय खोला गया है, जहाँ तीन वर्ष का पाठ्यक्रम है। लंदन में एक मोंटेसरी सोसाइटी स्थापित हुई है, जहाँ से प्रतिमाह एक पत्रिका छपती है 'मोंटेसोरियन'।

– इनका अपना जीवन स्वतंत्र प्रवृत्ति का जीवन है। ये किसी राज्य के शिक्षा विभाग की अधिकारी या प्रशासक नहीं हैं।

सार्वजनिक जीवन में व्यस्त हो जाने का इन्हें शौक नहीं। जब कोई बाहरी प्रवृत्ति नहीं होती तो ये ज्यादातर अपने एकान्त में खोई रहती हैं और अपने काम में मशगूल रहकर स्थिर चित्त से प्रयोग करती हैं। ये मूर्तिमंत उद्योगिनी हैं। अंग्रेजी नहीं जानतीं, मात्र फ्रेंच और इतावली जानती हैं, फिर भी दुभाषिए की सहायता से अंग्रेजी-भाषियों से साक्षात्कार लेती हैं, उनसे पत्राचार करती हैं। कुछ महिलाएँ इनके पास ही रहती हैं और इनके संपर्क-संसर्ग एवं शिक्षण से शिक्षाशास्त्र में पारंगत होने का प्रयत्न कर रही हैं।

– मोंटेसरी मध्य वित्तीय परिवार में जन्मी संस्कारी माता-पिता की एकमात्र पुत्री हैं। इनका जन्म इटली के स्वाधीनता संग्राम के अंतिम दिनों में सन् 1870 में हुआ था। उस युग में इटली का तत्कालीन समाज अत्यंत संकुचित था। वहाँ के परिवारों में व्यवसायों से या परंपरा से शिक्षा के साथ कोईसंबंध तक नहीं था। उन दिनों स्त्रियाँ शायद ही पढ़ती थीं। यही कारण था कि इस प्रतिभाशाली विद्यार्थी को सामाजिक बंधनों का सामना करना पड़ा था और एक समाज सुधारक के नाते आगे आना पड़ा था। आगे चलकर इन्होंने संपूर्ण विश्व के बालकों को स्वतंत्रता की जो अमूल्य भेंट अर्पित की थी, उसी स्वतंत्रता की इन्होंने अपने बाल्यकाल से सतत् उपासना की थी। लोक में व्याप्त जड़ धारणाओं को तोड़ने के लिए व्यक्ति में जिस आत्मबल और आत्मविश्वास की आवश्यकता है, वह बल और विश्वास डॉ. मोंटेसरी में प्रारंभ से ही मौजूद था।

उक्त बातें गिजुभाई ने डॉ. मोंटेसरी के व्यक्तित्त्व और वैयक्तिक साधनों के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने के लिए कही हैं। एक साधक कैसे अपने विचारों को क्रियारूप में परिणत करता है, उसके समर्थ उदाहरणों के रूप में डॉ. मोंटेसरी के चरित्र को उपस्थित करने की कोशिश की गई है। गिजुभाई इनसे शायद सर्वाधिक प्रभावित थे।

शिक्षा के संबंध में कभी मोंटेसरी के संदर्भ से तो कभी अपने चिंतन को स्वतंत्र रूप में लेखन में गिजुभाई ने प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं :

– मुझे तो कहानी कहना अच्छा लगता है। 'प्रदर्शन पद्धति' की बातें करना मैं शिक्षा शास्त्रियों और चिंतकों पर छोड़ता हूँ। जिस कला में हम विकसित होंगे, वही तो करेंगे न! बेकार ही दूसरों के क्षेत्र में क्यों दखल दें।

– बड़े लोग चाहे जो कहें, पर मैं तो इसी को सच्च कहानी कहता हूँ। बच्चे लोग जिसे रस ले-लेकर सुनें वही तो बाल कहानी होगी। मैं बाल कहानियों की पुस्तकों में संगृहीत करके जो प्रकाशित करता हूँ, वे सभी बाल कहानियाँ नहीं होतीं।

– स्वप्नों का विषय रसप्रद होता है। मुझे मेरे, दूसरों के तथा बालकों के सपनों की जाँच-पड़ताल करने में मजा आता है। बालकों को इच्छातृप्ति के सपने अधिक आते हैं। बबु सपने में गुब्बारे बजाती है, रमा बरफी खाती है, राम जी पुस्तक बाँचते हैं।

– कई बार मुझे ख्याल आता है कि जब कभी कोई मास्टर मर जाता है तो बालकों को जो छुट्टी मिलती है उससे उन्हें खुशी होती है या शिक्षक के मरने से? पर वे छुट्टी चाहते ही क्यों हैं? क्या यह इच्छा शिक्षक की मृत्यु चाहने के बराबर नहीं है?

– मुझे यह विचार कतई नहीं रुचता कि 'शिक्षक को अपना संपूर्ण समय शिक्षण को समर्पित कर देना चाहिए।' हाँ, शिक्षक अपनी अधिक से अधिक शक्ति शिक्षण के निमित्त उपयोग में ला सके, ऐसी अनुकूलता प्रदान की जानी चाहिए। जिस व्यक्ति को पढ़ाने का चस्का लग गया है, भले ही वह चौबीस में से पचीस घण्टे शिक्षण के पीछे पड़ा रहे, उसके लिए तो उसी में जीवन है, सच्चा आनंद है वह उसके लिए मोक्ष का द्वार है। ऐसे अध्यापकों की संख्या बढ़े, ऐसी कामना की जानी चाहिए।

– जीवन का उद्धार करने वाली कोई एकमात्र चीज है तो वह सत्य ही है, इसीलिए सत्य का विवेक अधिक बारीकी से करना पड़ता है। सत्य-असत्य के सूक्ष्म स्वरूप को समझा जाना चाहिए। कहीं हम असत्य को ही सत्य न मान बैठें, इसके लिए सावधान और चौकन्ना रहता पड़ेगा। सत्य को ही असत्य समझ लेने की भूल नहीं होनी चाहिए। मन, वाणी और कर्म की एकता ही सत्य का शुद्ध स्वरूप है।

– वेद छूतछात नहीं जानता अपितु आदमी छुआछूत रखता है। इस विचार तक तो उस ब्राह्मण ने पहुँचा दिया। मुझे भरोसा है कि कुछ अरसे में वे स्वयं भी छूतछात नहीं मानेंगे। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि वेद छूतछात नहीं करता, आदमी करता है। मैं स्वयं मनुष्य हूँ, अतः छुआछूत से इन्कार करता हूँ। जब तक मनुष्यत्व है तब तक कोई किसी से छुआछूत न करे।

– किसी मनुष्य में कवि की प्रतिभा होती है, किसी में संगीतकार की तो किसी में कुम्हार की। दुनिया के कुम्हारों में सर्वश्रेष्ठ कुम्हार बनना, उस व्यवसाय की महत्ता बढ़ाना, उसमें नए अनुसंधान करना, उसे धन-संपन्न बनाना, उसे प्रतिष्ठा दिलाना- इतना कुछ जो कर सके वह कुम्हार की प्रतिभा है और यह प्रतिभा उसमें हो सकती है। इतना कुछ करने के लिए अगर कुम्हार को पूर्ण अवसर मिल जाए तो हम प्रतिभा ही कहेंगे।

उक्त बिंदुओं को, गिजुभाई को जितना पढ़ पाया उसमें से चुनकर तथा उपयोगी समझकर उद्धृत कर रहा हूँ। गिजुभाई ने बड़ी बारीकी से शिक्षा क्षेत्र का अवलोकन, विश्लेषण, चिंतन और मनन किया है। उनके बारीक अनुसंधान हर शिक्षक के लिए उपयोगी तो हैं ही स्वयं प्रयोग करने के लिए प्रेरित करने वाले भी हैं। उन्हें पढ़ते हुए बालक शिक्षण की कक्षा से गुजरने का आनंद जैसा है। ❑

(निदेशक, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)

बचपन की बुनियाद का दुश्मन कौन?

❑ **डॉ. रूपेश कुमार चौहान**

दुनिया का शायद ही कोई ऐसा समाज हो, जिसकी उन्नति का मूल उत्तम शिक्षा व्यवस्था न रही हो। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा, क्योंकि इस देश की शिक्षा प्राचीनकाल से ही समुन्नत रही है। वैदिक काल में आश्रम व्यवस्था से अवतरित होती हुई शिक्षा ने आधुनिक काल तक आते-आते अपने पतनोन्मुख स्वरूप को ही प्रदर्शित किया है। जिस प्रतिमान पर उस समय आचार्य खरे उतरते थे आज उनका सर्वाधिक पतन देखने को मिलता है। आश्रम व्यवस्था में आचार्य का चरित्र ही बच्चे को भावी राह की ओर पथ-प्रदर्शक रहा करता था, जिसमें आज के दौर में भारी गिरावट देखने को मिल रही है। आश्रम व्यवस्था में आचार्य एक समर्पण का नाम था, जिसमें उत्कृष्ट बीज विद्यमान थे-

ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणै कृतः।।

-शुक्रनीतिसार

ये बीज ज्ञान, कर्म, श्रेष्ठ विद्वान, ईश्वर की उपासना, शम, दम और दया आदि थे। इसके साथ-साथ यह भी साफ दृष्टिगोचर होता है कि आचार्य अपने व्यवहार से शिष्य को संस्कारित करता था, इसका वर्णन अथर्ववेद में किया गया है। वहाँ कहा गया है -

आचार्य उपनयमानो
ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्रं उदरे विभर्ति तं
जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।

-अथर्ववेद

यह एक ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण है जिसकी प्राप्ति विश्व में कहीं नहीं हो सकती। जिस संस्कृति ने शिष्य को शिक्षित करने की तुलना माता के गर्भस्थ शिशु के पालन-पोषण की तरह करने का उपदेश दिया था, उसी संस्कृति के खेवनहारों ने आज इसका इतना मान-मर्दन कर दिया है कि बच्चों का मानसिक एवं शारीरिक विकास दोनों ठप्प होते जा रहे हैं।

इसको जानने के लिए संस्कृति का समग्र

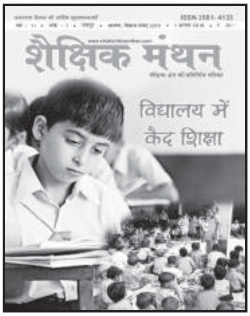

नकारात्मक सोच लिए जिस तरह आजकल उग्रवादी और जेहादी तैयार हो रहे हैं उसी प्रकार सकारात्मकता के साथ इस सोच को भी बदला जा सकता है। सही रूप में कहें तो इस समय विद्यालय ही सब कुछ परोस रहे हैं। प्रथम दृष्ट्या शिक्षक के अयोग्य होने तथा योग्य होने पर भी हमें क्या मतलब, क्योंकि हम तो वेतन के लिए ही काम कर रहे हैं, जैसी भावनाओं ने बच्चों के भविष्य का बेड़ा गर्क कर दिया है। दूसरी तरफ यह भी मानना पड़ेगा कि अकेला शिक्षक ही बच्चों का दुश्मन नहीं है बल्कि उनके स्वयं के माता-पिता और अभिभावकों का भी बच्चों के कॅरियर या विकास से कोई लेना-देना नहीं रह गया है। सच कहें तो इस आर्थिक प्रश्रय वाले समय में बच्चों का स्थान अर्थ ने ले लिया है।

रूप से आकलन करना अत्यन्त आवश्यक है। नकारात्मक सोच लिए जिस तरह आजकल उग्रवादी और जेहादी तैयार हो रहे हैं उसी प्रकार सकारात्मकता के साथ इस सोच को भी बदला जा सकता है। सही रूप में कहें तो इस समय विद्यालय ही सब कुछ परोस रहे हैं। प्रथम दृष्ट्या शिक्षक के अयोग्य होने तथा योग्य होने पर भी हमें क्या मतलब, क्योंकि हम तो वेतन के लिए ही काम कर रहे हैं, जैसी भावनाओं ने बच्चों के भविष्य का बेड़ा गर्क कर दिया है। दूसरी तरफ यह भी मानना पड़ेगा कि अकेला शिक्षक ही बच्चों का दुश्मन नहीं है बल्कि उनके स्वयं के माता-पिता और अभिभावकों का भी बच्चों के कॅरियर या विकास से कोई लेना-देना नहीं रह गया है। सच कहें तो इस आर्थिक प्रश्रय वाले समय में बच्चों का स्थान अर्थ ने ले लिया है लेकिन वह इतना भी नहीं जानते कि पुरानी कहावत है-

पूत कपूत तो का धन संचै,
पूत सपूत तो का धन संचै।।

कहते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार है जो कि समाज की रीढ़ भी है। परन्तु इसी परिवार की प्रथम शिक्षिका माँ ने अपना कर्त्तव्य आधुनिकता की भेंट चढ़ा दिया है उसे बच्चे से ज्यादा अपनी ही चिन्ता होने लगी है। विद्यालय के इन दो बिन्दुओं के अलावा तीसरा बिन्दु अति महत्त्वपूर्ण है और वह है स्वयं विद्यार्थी। सही अर्थ में कहें तो आज विद्यार्थी भी विद्या को अर्थी के समान मानकर चल रहा है क्योंकि हर वह अवगुण उसके अन्दर समाता चला जा रहा है जो शिक्षा के लिए समस्या हो सकता है। प्राचीन काल में विद्यार्थी के पाँच लक्षण चाणक्यनीतिदर्पण में बताये गये थे-

काक-चेष्टा, बको-ध्यानं,
श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पहारी, गृहत्यागी,
विद्यार्थी पंच लक्षणं।।

-चाणक्यनीतिदर्पण

मतलब साफ है कि कौए की तरह चतुर, बगुले की तरह ध्यान वाला, कुत्ते की तरह झट से उठने वाला, कम आहार व भोगविलासी एवं भौतिक संसाधनों से दूर रहने वाला ही विद्यार्थी है। अत: आवश्यकता इस बात की भी है कि विद्यार्थी पुरानी गुरुकुलीय परम्परा को आत्मसात् करें जहाँ कि चरित्र ही सब कुछ था।

शिक्षा के उपर्युक्त तीन स्तम्भ कहे गये हैं लेकिन आधुनिकता ने इन तीनों को पतनोन्मुख कर दिया है। असल में लॉर्ड विलियम बैंटिक के समय लॉर्ड मैकाले ने शायद इसी शिक्षा नीति की आवश्यकता समझी थी, क्योंकि उसे पता था कि भारतीयों की शिक्षा प्रति संस्कार प्रधान है और इसे यदि भोग प्रधान बनाना है तो यही रास्ता है। आज हम वही कर रहे हैं अर्थात् पश्चिम का अंधानुकरण। इस वेस्टर्न प्रेम ने सब-कुछ तार-तार कर दिया है विद्यालय सही पाठ्यक्रम से ज्यादा बस्तों के बोझ को बढ़ाने में लगे हैं। स्कूलों में शारीरिक विकास जैसे ठप्प होता जा रहा है। बच्चों को अपने लिए समय नहीं मिल पा रहा है। माता-पिता, गुरु, शिष्य एवं समाज सबका पतन हो चुका है। विद्यालय पैसे कमाने की मशीन बन चुके हैं। अच्छे-अच्छे शिक्षाविद् बंद कोठरी की खाक छान रहे हैं लेकिन पैसे के बल पर अनपढ़ एवं संस्कारहीन उद्योगपति, प्रॉपर्टी डीलर, ठेकेदार एवं पेशेवर दलाल स्कूलों के मालिक बन रहे हैं। शिक्षकों का प्रशिक्षण मशीनी हो चुका है। सबको यही लगता है कि जो चल रहा है वह ठीक है लेकिन सब चलता है कि प्रक्रिया बद से बदतर बनाती जा रही है।

विद्यालयों की दिनचर्या इतनी अनियमित है कि विद्यार्थी प्रात: पाँच बजे से रात्रि 11 बजे तक व्यस्त रहता है। इस व्यस्त समय सारणी में बच्चे अपने खेलने के लिए समय ही नहीं निकाल पा रहे हैं। न उसे प्रात: वंदन से मतलब है न संध्या वंदन से। जहर उगलते वातावरण ने तो जैसे आगे में घी का काम किया है। दिनों दिन बढ़ते प्रदूषण से बच्चों को स्वस्थ माहौल नहीं मिल पा रहा है। व्यक्ति के विकास में अध्ययन के साथ-साथ खेल एवं मनोरंजन की अपनी भूमिका होती है जो कि आज नदारद होती जा रही है और वातावरण की भी शुद्धता अत्यन्त महनीय शर्त है। वातानुकूलित बस, वातानुकूलित विद्यालय, वातानुकूलित घर और तेज दौड़ती जिन्दगी में बचपन खोता चला जा रहा है। न आचार्य को शिष्य से लगाव है, न अभिभावकों को बच्चे से और न ही बच्चे को स्वयं से। ऐसी परिस्थिति में कौन किसका खेवनहार हो सकता है!

आज विद्यालयों में भाषा का अध्ययन या यूँ कहें कि संस्कृत भाषा का अध्ययन कमतर माना जाता है जबकि यही भाषा हमारी मानसिक शांति एवं जागृति के साथ-साथ भाव प्रवणता को भी धारदार करती है। आज संभवत: ऐसा कोई घर नहीं जहाँ संस्कृति के छ: शत्रु- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य ने अपने पैर नहीं पसार लिए हों। आज जिस चीज की हमें सख्त आवश्यकता है वह नैतिक शिक्षा से ही है और इसकी विद्यालयों की भेंट चढ़ने से रोकना होगा। कुछ ऐसा करना होगा, जिससे विद्यालय ज्ञान के साथ-साथ संस्कार परोसे तभी हम वेद के कथनानुसार- **आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत:** (यजुर्वेद) अर्थात् सभी ओर से कल्याणपरक बुद्धि-बल को प्राप्त कर पायेंगे। ❑

पंजीयन संख्या -5/ चित्तौड़गढ़/ 94-95 ।।ॐ।। 0145-2603524

विद्या भारती, चित्तौड़ प्रान्त

(विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान एवं विद्या भारती राजस्थान से संबद्ध)

'माधव स्मृति' आदर्श विद्या निकेतन (माध्यमिक) परिसर, पुष्कर-मार्ग, अजमेर-305004

रामप्रकाश बंसल **वीरेन्द्र कुमार शर्मा**
अध्यक्ष **मंत्री**

विद्या भारती चित्तौड़ प्रांत का उद्देश्य विद्यार्थियों में नैतिक, आध्यात्मिक, चारित्रिक गुणों का विकास कर राष्ट्र समर्पित जीवन का निर्माण करना है। विद्यार्थियों में गुणों के विकास के लिए संस्था द्वारा 12 जिलों में चलाये जा रहे विद्यालयों की स्थिति निम्न प्रकार है-

औपचारिक शिक्षा केन्द्र

विद्यालय	संख्या	छात्र संख्या			आचार्य संख्या		
		भैया	बहिन	योग	आचार्य	आचार्या	योग
उच्च माध्यमिक	18	692	366	1058	71	40	111
माध्यमिक	89	6703	3673	10376	495	217	712
उच्च माध्यमिक	85	12175	6626	18801	643	285	928
प्राथमिक शिशुवाटिका सहित	81	29600	18919	48519	633	1077	1710
योग	**273**	**49170**	**29584**	**78754**	**1842**	**1619**	**3461**

अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र

	संख्या	छात्र संख्या	आचार्य संख्या
संस्कार केन्द्र	274	5611	287
एकल विद्यालय बांसवाड़ा परियोजना	802	23900	802
एकल विद्यालय सोधवाड़ क्षेत्र	42	1677	65
योग	1118	31188	1154

प्रांत में तीन अर्द्ध आवासीय विद्यालय कोटा, डूँगरपुर एवं चित्तौड़गढ़ में तथा एक निःशुल्क अर्द्धआवासीय विद्यालय कोठारा (बाँसवाड़ा) में चलता है।

बोर्ड का परीक्षा परिणाम

क्र.	वि.स.	छात्र	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	पूरक	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत
कक्षा 10	106	4935	2881	1575	213	162	104	94.61
कक्षा 12	18	533	314	140	07	24	48	86.49

90 भैया/ बहिन के कक्षा 10वीं में 90 प्रतिशत से अधिक अंक आये उसी 18 भैया/ बहिन के कक्षा 12वीं में 85 प्रतिशत से अधिक अंक आये।

अतः सभी बंधुओं से आग्रह है कि अपने बच्चों को संस्कारित एवं गुणवान बनाने के लिए उन्हें विद्या भारती द्वारा संचालित विद्यालयों में प्रवेश दिलाएँ।

रामप्रकाश बंसल **वीरेन्द्र कुमार शर्मा**
अध्यक्ष **मंत्री**

Indeed, education ideally is the same method and mechanism of civilising people. It ought to begin with knowledge made available to young minds, then to Sanskriti and to Dharma. Fortunately, humans are gifted with one of the greatest gifts of nature, that is the ability to articulate sound as desired. This paved way to creation of languages, and once languages found written forms, they became records of knowledge. Once such records came into existence, it had become easy for one to travel through knowledge tradition of many generations.

Concept and need of Sanskar

❑ **Dr. T. S. Girishkumar**

Any society shall spend considerable amount of time right in the prime of a human life for education. Normally it is a long and continuous period of considerable long time, during which citizens grow into becoming adults in the society. The process of education starts at a very early age, should we include Nursery, it rather begins at the age of three itself, then to lower, Upper Kindergarten, and then only to class One. Thus, something like three years plus may be spent before a child goes to class one.

The common pattern of schooling begins with class one, and goes up to class ten, a long ten years of daily routine from morning to evening. As young and energetic, children do not get tired or exhausted of this rigour, but the prime of their childhood is spent inside the four walls of classrooms. This may appear rather cruel, but as it is now, we have no other alternatives to these, having such enormous amount of knowledge to be instilled in the young minds to make them civilised humans for a civilised society.

Humans and other living beings

As living beings, no being is superior to any other by virtue of it being a being. In the eyes of nature all beings are equal and same. Each one may be gifted with some unique features for existence and that is just all. The Vedas too say the same, precisely. It is only the Semitic thoughts which projects anthropomorphic ideas, and they are both unrealistic and unfounded. Those, let us understand, are thoughts coming out of civilisations those are not refined at the time of their origin, and had not got refined sufficiently to make amendments in time.

Animals continued existing more or less similar to their first ancestor, having so significant changes or alternations to their beings. A cat of the old and a cat of today may not differ significantly. Their cycle of life remains routine, the same way as it used to be before. One may say that animals live by instincts and not through thoughts, albeit it remains a point that we are not able to distinguish sufficiently between these two, on deep thoughts. It also remains an-

other point to ponder of the changes happening among animals which are in constant contact with humans. They learn new things different from their instincts and adopt themselves to the human environments.

Humans also carry instincts, albeit this may be dormant. What might happen to a hypothetical human child that may be isolated from civilised society, and not living in contact with other humans? There shall be hardly any doubt in the minds of one, that such a child shall grow in nature as not the kind of human being in our concept. (it is not forgotten that a human child needs constant support from parents to even survive). People have written stories to this effect, and they are quite popular too.

Perhaps it is also not the case that human brains are big enough to become 'civilised'. We have other living forms like the dolphins who are told to be having larger brains than of humans. But they still go on just as their ancestors. It is likely that a human child in isolation may be lesser in intelligence than a dolphin or similar living being. So, what really civilises humans is not the brain capacity alone, there shall also be other things. Systematically approaching, the whole process of civilisation that we in Bharat see as Sanskriti begins with given knowledge tradition. From knowledge tradition (however minimal) to Sanskriti and to the transcendental - Dharma - is the process that is an ideal situation. But this had happened only in Bharat in the entire world.

Education Mechanism.

Indeed, education ideally is the same method and mechanism of civilising people. It ought to begin with knowledge made available to young minds, then to Sanskriti and to Dharma. Fortunately, humans are gifted with one of the greatest gifts of nature, that is the ability to articulate sound as desired. This paved way to creation of languages, and once languages found written forms, they became records of knowledge. Once such records came into existence, it had become easy for one to travel through knowledge tradition of many generations. The role of Acharyas becomes most important here. They make it easily available to seeking minds. Thus, the apparent long period of time spent in schools is actually travelling from the beginning to the present time.

From knowledge to Sanskriti to Dharma should be an ideal education mechanism. When we look at pattern and methods in ancient Bharat, the Gurukulas did precisely the same. Those who go to Gurukulas must have been lesser in numbers, but they all must have come out as meaningful citizens. And undoubtedly, most of them must have been scholars who benefitted the whole society. Knowledgeable persons' knowledge was for everyone. The quantity must have been less, but there was no compromise on quality. Education then, really used to be 'Sa Vidya Ya Vimuktaye'. For Bharatiya knowledge tradition, all steps to whatever, ultimately are aimed at just one desideratum, moksha. Everything is rooted in the Vedopanishadic knowledge tradition and everything is ultimately aimed at the attainment of moksha. Bharatiya education catered to both, resulting in overall development of individuals to make them socially meaningful and complete.

For the present

In later days, this education system received much set back: long periods of invasion and their ways got imposed. In time, the education system that got evolved lost much of the originality and the present system became a copy of what is commonly seen in Europe. This, at once poses the herculean task of rebuilding the very structure of our education system and that shall automatically include the teachers and curricula.

Keeping in mind the process and method of Bharatiya education, the present education ought to be so modified as from knowledge to Sanskriti and to Dharma. Schools must be set into three sections of curriculum, first providing knowledge to young minds about most generality, second providing Sanskriti with specificity and eventually providing insights into Dharma.

Modern scholars identify thee quotients, intelligence, emotional and spiritual. They abbreviated these as IQ, EQ and SQ. the theory is that, a complete balance between these three should be ideal and desirable in curricula. Let us see these in the light of ancient Bharatiya education pattern. IQ shall deal with what we discussed as knowledge, EQ as Sanskriti, and SQ as Dharma. As a matter of fact, we really do not have to do anything anew as re-inventing a wheel, we only have to follow the path demonstrated to us by the ancient Acharyas.

Our task becomes relatively simple here, we have to look at the old to create a curriculum to suit our requirements and train our teachers to that. We just have to take lessons from the old and create a band of new Acharyas for the present. Thus, education should also be educating the educators.❑

(Ex. Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

आज सभी प्रमुख देशों के उच्च शिक्षा केंद्रों में नियामक संस्थाओं का दखल कम हो रहा है, परंतु भारत में सरकारी शिकंजा कसता जा रहा है। बीमार पड़ी उच्च शिक्षा व्यवस्था के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा यूजीसी के स्थान पर एक उच्च शिक्षा आयोग की स्थापना का प्रस्ताव है जो गुणवत्ता के संरक्षण, संवर्धन और निगरानी की व्यवस्था करेगा जबकि शिक्षा के संसाधन सीधे मंत्रालय के नियंत्रण में रहेंगे। सरकार मानती है कि दोहरी नौकरशाही की मजबूत जकड़बंदी के बिना शैक्षिक उत्कृष्टता को गति नहीं दी जा सकेगी। सरकार के मन में उच्च शिक्षा के लिए शायद एनसीईआरटी की तर्ज पर कोई उच्च स्तरीय व्यवस्था ही विकल्प लगती है।

उच्च शिक्षा के समक्ष बड़ा संकट

❑ **प्रो. गिरिश्वर मिश्र**

भारत की उच्च शिक्षा व्यवस्था से आज सभी तबकों को शिकायत है। शिक्षा के प्रत्यक्ष हितग्राही छात्र और अध्यापक भी शिक्षा में सुधार चाहते हैं, परंतु सुधार की आकांक्षा का अभिप्राय सबके लिए एक सा नहीं है। पढ़ाई के लिए अवसरों की कमी यानी प्रवेश, शिक्षण की गुणवत्ता का ह्रास, अध्ययन-अध्यापन की परिस्थितियों में सुधार, रोजगार के अवसरों का अभाव और मँहगा होता शिक्षण-प्रशिक्षण ऐसे खास मुद्दे हैं जिन्हें लेकर वर्षों से चिंता व्यक्त की जा रही है। इन्हें लेकर सरकारी तंत्र के कामचलाऊ रवैये के कारण छात्रों, अभिभावकों, शिक्षाविदों और नीति-निर्धारकों सभी में असंतोष है। ऐसी परिस्थितियां कमोबेश केंद्र के साथ ही सभी राज्यों के शिक्षा संस्थानों में देखी जा सकती हैं। परिसरों में गैर अकादमिक प्रभाव हावी हो रहे हैं। आज उच्च शिक्षा के क्षेत्र में न केवल निजी संस्थाओं की वृद्धि हुई है, बल्कि दूर शिक्षा, निजी विश्वविद्यालय, स्ववित्त पोषित कार्यक्रम, विदेशी संस्थानों के साथ साझेदारी में पाठ्यक्रम आदि भी चल रहे हैं। इस शैक्षिक कोलाहल में मौलिकता, सृजनशीलता और नवोन्मेष जैसे सरोकार अनसुने रहे जा रहे हैं। जब पश्चिम अंधकार में डूबा था तब भारत में उच्च स्तर के विश्वविद्यालय थे, परंतु आज दुनिया के शीर्ष संस्थानों की सूची से भारतीय संस्थान नदारद हैं। अंग्रेजी राज में 1857 में सार्वजनिक क्षेत्र में मद्रास, कलकत्ता और बंबई में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। ये विशुद्ध प्रशासनिक संस्थाएँ थीं न कि शिक्षण संस्थान। लंदन विश्वविद्यालय के संघीय ढाँचे की तर्ज पर विश्वविद्यालय का काम स्थानीय महाविद्यालयों को संबद्धता देना, पाठ्यक्रम बनवाना, परीक्षा करवाना और डिग्री देना था। जो महाविद्यालय थे वे भारत के उच्च वर्ग के लोगों को औपनिवेशिक नौकरशाही के लिए तैयार करते थे। अभिजात वर्ग ही शिक्षा संचालित कर रहा था। भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 से

एकात्मक विश्वविद्यालय की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ, परंतु 1919 में भारत सरकार के एक्ट ने इसे उलटकर संघीय रूप और प्रांतों की प्रशासन व्यवस्था को बहाल किया। 1921 में राष्ट्रीय सरकार ने शिक्षा के केंद्रीय सलाहकार मंडल (केब) का गठन किया जिससे प्रांतीय सरकारों से जुड़े नीतिगत मसलों पर आम सहमति बनायी जा सके। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् का गठन 1946 में हुआ।

संविधान शिक्षा का दायित्व मुख्य रूप से राज्यों को सौंपता है। यद्यपि केंद्र को अवशिष्ट शक्तियों से ताकत दी है। केंद्र को बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा, उच्च शिक्षा का संयोजन एवं स्तर का निर्धारण तथा केंद्रीय अनुदान पाने वाले संस्थानों के साथ ही वैज्ञानिक या तकनीकी संस्थाओं की जिम्मेदारी दी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी 1964 में नियामक संस्था के रूप में अस्तित्त्व में आया। राज्य सरकारों को अनुदान देना शुरू हुआ जो आधार संरचना के बदले संचालन के लिए था। सरकार ने यूजीसी, नैक, एनसीटीई, और एनआइसीटी जैसी संस्थाओं को स्थापित कर नियंत्रित-नियमित करने और निगरानी की प्रणाली बनाई पर स्थिति बिगड़ती ही जा रही है। शिक्षा को औद्योगीकरण जैसे नए राष्ट्रीय लक्ष्य से जोड़ा गया। केंद्र और प्रदेश की सरकारों के बीच अनुदान और नियमन को लेकर मतभेद शुरू हुए। सामाजिक रूप से सर्व समावेशी बनाने के लिए अपेक्षित सुविधा जुटाए बिना छात्र संख्या बढ़ा दी गई। जनप्रिय कारवाई के तौर पर राज्यों ने उच्च शिक्षा को अधिकाधिक व्यापक बनाया। निजीकरण को बढ़ावा दिया और व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया। अब निरंतर घटती गुणवत्ता वाली शिक्षा से निकल रहे अधिसंख्य छात्रों के हुजूम से शिक्षा को बचा पाना थोड़ी सी अच्छी संस्थाओं के बस की बात नहीं। उल्टे वे अपना स्तर बचाए रखने में नाकामयाब हो रही हैं।

राज्यों के पास आधार संरचना के लिए धनाभाव था। सरकारें, नियुक्ति हो या अकादमिक रीति-नीति, सभी पर नियंत्रण जमाती गईं। नीति, वरीयता और कार्यक्रम को निश्चित करने की शक्ति केंद्र सरकार ने अपने हाथ में ली। वस्तुत: केंद्र और राज्य दोनों ही अपने क्षेत्रों में अधिकाधिक नियंत्रण की दिशा में आगे बढ़ते गए। फर्क यही था कि केंद्र सरकार ने जहाँ कम संख्या और गुणवत्ता पर ध्यान दिया वहीं राज्य स्थानीय राजनीति के प्रभाव में गुणवत्ता की अनदेखी कर महाविद्यालयों की संख्या बढ़ाते गए। इस युवा देश को ज्ञान की शक्ति से ही आगे बढ़ाया जा सकता है। आज ज्ञान केंद्रित अर्थव्यवस्था में भागीदारी हेतु वैश्विक और राष्ट्रीय मानकों पर खरे उतर सकें इस उद्देश्य से युवाओं को कौशल संपन्न बनाने का संकल्प लिया जा रहा है। परिणामोन्मुखी शिक्षा व्यवस्था हो और रोजगार की संभावना बढ़ाने पर जोर है। इसके लिए पाठ्यक्रम में सुधार, अकादमिक संसाधनों की उपलब्धता, अध्यापन और शोध की गुणवत्ता में सुधार, प्रौद्योगिकी का उपयोग और समावेश, वैकल्पिक शिक्षण की पद्धति और पारदर्शी, सतर्क प्रशासन और प्रबंध उपलब्ध कराना प्रमुख हो गए हैं। ज्ञान के साथ कुशलता, सम्यक दृष्टिकोण और मूल्य भी विकसित होने चाहिए। इनके लिए प्रभावी नियामक व्यवस्था स्थापित करना अपेक्षित है।

आज सभी प्रमुख देशों के उच्च शिक्षा केंद्रों में नियामक संस्थाओं का दखल कम हो रहा है, परंतु भारत में सरकारी शिकंजा कसता जा रहा है। बीमार पड़ी उच्च शिक्षा व्यवस्था के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा यूजीसी के स्थान पर एक उच्च शिक्षा आयोग की स्थापना का प्रस्ताव है जो गुणवत्ता के संरक्षण, संवर्धन और निगरानी की व्यवस्था करेगा जबकि शिक्षा के संसाधन सीधे मंत्रालय के नियंत्रण में रहेंगे। सरकार मानती है कि दोहरी नौकरशाही की मजबूत जकड़बंदी के बिना शैक्षिक उत्कृष्टता को गति नहीं दी जा सकेगी। सरकार के मन में उच्च शिक्षा के लिए शायद एनसीईआरटी की तर्ज पर कोई उच्च स्तरीय व्यवस्था ही विकल्प लगती है। प्रभावी नियामक संस्था के अभाव में उच्च शिक्षा की साख को बट्टा लगता है। गिरते शिक्षा स्तर को देखते हुए परिवर्तन बेहद जरूरी है, परंतु उसे शिक्षा जगत की स्वायत्तता की कीमत पर नहीं होना चाहिए।

आज आधारभूत सुविधाओं के अभाव के कारण शैक्षिक स्तर में गिरावट आई है। आज उच्च शिक्षा असंगठित परिवार जैसी होती जा रही है। नियामक संस्थाओं की भूमिका सहज करने वाली होनी चाहिए। आज के नियामक तौर- तरीके बड़े जटिल, बहुस्तरीय और समयसाध्य हैं। नीति में अस्थिरता नहीं होनी चाहिए। उनके द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण भ्रम, विलंब और अनुत्साह का माहौल बनता है। भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखकर वित्तीय संसाधनों, उपलब्धता और समानता, गुणवत्ता के मानक और प्रासंगिकता के प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो रहे हैं। इसके लिए सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के निवेश की जरूरत है। बीते दो दशकों में उच्च शिक्षा में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ी है, लेकिन यह विस्तार अव्यवस्थित ही अधिक रहा है। अपर्याप्त आर्थिक संसाधनों के बिना सार्वजनिक संस्थान और मुनाफा कमाने वाले निजी संस्थान दोनों उच्च शिक्षा का स्वरूप बिगाड़ रहे हैं। इन समस्याओं का निराकरण करने पर ही नई संस्था सार्थक सिद्ध होगी। ❑

(कुलपति, महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र))

विश्वविद्यालयों में फिसलता विज्ञान शोध

❑ डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

किसी भी देश की प्रगति की पटकथा लेखन में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है विश्वविद्यालयों की, क्योंकि उन्हीं में मौलिक चिंतन पनपता है और वहीं से विज्ञान शोध की बेल का विकास होता है जो फैलती हुई अंततः शीर्ष वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों तक पहुँचती है। कहना न होगा कि यह विज्ञान शोध ही है जो अंतरराष्ट्रीय जगत में देश की छवि को आकाश की ऊँचाइयों तक पहुँचा देता है और समाज की भौतिक प्रगति को ठोस आधार प्रदान करता है। केवल प्रतिष्ठानों में ही नहीं, विश्वविद्यालयों में भी ऐसी खोजें होती ही रही हैं जिन्होंने विज्ञान के नये से नये आयामों को उद्घाटित किया और मानवता के लिये ज्ञान मार्ग प्रशस्त किया। उदाहरणार्थ, रेडियम की खोज फ्रांस के पेरिस विश्वविद्यालय तथा अनेक ट्रांसयूरेनिक तत्त्वों की अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में हुई थी। दुर्भाग्य की बात है कि भारत के विश्वविद्यालयों में वर्तमान में शोध का स्तर निरंतर फिसलता जा रहा है। इससे चिंतित होकर ही 104वीं इंडियन साइंस कांग्रेस ने जनवरी 2018 में ''Quality Research'' (गुणवत्तापूर्ण शोध) की वकालत की है। स्पष्ट है कि शोध के स्तर में गिरावट के कारणों पर दृष्टि डाल लेना आवश्यक है।

सबसे पहला कारण तो गत कुछ वर्षों में विश्वविद्यालयों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि है। अधिकतर के पीछे राजनैतिक कारण ही रहे हैं तथा उच्च शिक्षण के सिद्धांतों की अनदेखी की गई है। इस समय राज्यीय, केन्द्रीय तथा निजी विश्वविद्यालयों की कुल संख्या 800 है जिसमें 369 राज्यीय हैं और 150 उच्च शिक्षण प्रतिष्ठान (केन्द्रीय विश्वविद्यालय, आइ.आइ.टी., आइ.आइ.एम आदि) केन्द्र द्वारा उपलब्ध कराये गये फंड द्वारा संचालित हैं। संख्या में यह असीम वृद्धि शोध को बाधित ही करती है क्योंकि उसके लिये जितने अधिक धन की आवश्यकता होती है वह सरकारें उपलब्ध नहीं करा पातीं। दृष्टव्य है कि विज्ञान शोध निश्चित रूप से खर्चीली होती है। इसीलिये 2015 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालयों के तत्कालीन कुलपति श्री गिरीश चंद्र ने कहा था कि बहु तकनीकी संस्थानों की भांति विश्वविद्यालय खोलते चले जाने का कोई औचित्य नहीं होता। वस्तुतः कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में मूलभूत अंतर यह होता है कि कॉलेज शिक्षण अभिमुखी होते हैं (यद्यपि शोध पर पाबंदी नहीं होती) जबकि विश्वविद्यालय शोध अभिमुखी। इसीलिये

इसीलिये 2015 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालयों के तत्कालीन कुलपति श्री गिरीश चंद्र ने कहा था कि बहु तकनीकी संस्थानों की भांति विश्वविद्यालय खोलते चले जाने का कोई औचित्य नहीं होता। वस्तुतः कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में मूलभूत अंतर यह होता है कि कॉलेज शिक्षण अभिमुखी होते हैं (यद्यपि शोध पर पाबंदी नहीं होती) जबकि विश्वविद्यालय शोध अभिमुखी। इसीलिये विश्वविद्यालयों की अत्यधिक संख्या के स्पष्ट अर्थ हैं - स्तर के साथ समझौता (पर्याप्त फंड की अनुपलब्धता के कारण)। फंड की कमी से शोध उपकरणों के क्रय में तो समस्या आती ही है, नियुक्तियाँ भी उचित मात्रा में नहीं होतीं।

विश्वविद्यालयों की अत्यधिक संख्या के स्पष्ट अर्थ हैं – स्तर के साथ समझौता (पर्याप्त फंड की अनुपलब्धता के कारण)।

फंड की कमी से शोध उपकरणों के क्रय में तो समस्या आती ही है, नियुक्तियाँ भी उचित मात्रा में नहीं होतीं। 28.03.18 की 'द हिंदू' की एक रपट के अनुसार (उदाहरण के लिये) North East Regional Institute of Science & Technology अरुणाचल प्रदेश के विद्यार्थियों को निदेशक की नियुक्ति तथा असम महिला विश्वविद्यालय की छात्राओं को कुलपति तथा प्रोफेसरों की नियुक्ति के लिये आंदोलन करना पड़ा। मणिपुर विश्वविद्यालय के विद्यार्थी भी लंबे अर्से से प्रोफेसरों की नियुक्ति को लेकर आंदोलनरत हैं। इसी समस्या पर छह डीन और पाँच विभागाध्यक्ष अपने पदों से त्यागपत्र तक दे चुके हैं। यही दशा लगभग सभी विश्वविद्यालयों की है। अब यदि योग्य अकादमिक व्यक्ति ही नहीं होंगे तो शोध किस प्रकार हो सकेगा? ऊपर से फंड की कमी के कारण फीस में भी अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने तो पत्र लिख कर सातवें वेतन आयोग के तहत वेतन पुनर्निर्धारण के लिये सभी विश्वविद्यालयों को तीस प्रतिशत खर्च की व्यवस्था स्वयं ही करने के निर्देश दिये हैं। इन परिस्थितियों में राज्यीय प्रतिष्ठानों की दशा समझी जा सकती है। ऐसी दशा में गरीब वर्ग से तो प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की आवक में जबरदस्त गिरावट होगी (और हो रही है)। अब जब प्रतिभाशाली विद्यार्थी ही नहीं होंगे तो शोध के स्तर का क्या होगा, यह समझा जा सकता है।

प्राध्यापकों की प्रोन्नति से रिसर्च के जुड़े होने के कारण, विश्वविद्यालय, पीएच.डी. की फैक्ट्रीभर बनकर रह गये हैं। फेक जर्नलों में घटिया स्तर के शोधपत्रों के प्रकाशन की बाढ़ सी आ गई है। यद्यपि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने स्तरीय जर्नलों की सूची प्रकाशित कर इसे रोकने का प्रयत्न किया है, परंतु सूची में अनेक कमियाँ रह गई हैं। नकल की प्रवृत्ति भी कम होने का नाम नहीं ले रही है यद्यपि अनेक विश्वविद्यालय इस दिशा में गंभीरता से प्रयासरत हैं। स्मरणीय है कि शोध प्रबंधों को अंग्रेजी में लिखने की बाध्यता भी नकल की प्रवृत्ति के प्रसार में सहायक होती है। अभी कुछ अवधि पूर्व बहरीन में अंग्रेजी की प्रोफेसर गीता पोन्नुचामी ने भी इसकी पुष्टि की।

इधर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भविष्य के लिए कुछ स्वागत योग्य कदम उठाये हैं जो विश्वविद्यालयों को शोध अभिमुखी तथा कॉलेजों को शिक्षण अभिमुखी बनाने में सहायक होंगे। अब विश्वविद्यालयों में नियुक्ति एवं प्रोन्नति के लिये शोध का अनुभव अनिवार्य होगा जबकि कॉलेजों में नहीं। इसीलिये विश्वविद्यालय में नियुक्ति के लिये भी पीएच.डी अनिवार्य होगी, NET नहीं। NET की आवश्यकता केवल कॉलेजों में नियुक्ति के लिये सीमित रह गई है। सक्रिय शोध कार्य के लिये विश्वविद्यालय में शिक्षण के घंटों में भी कुछ छूट का प्रावधान (2 घंटे प्रति सप्ताह) किया गया है जो अत्यावश्यक था। अब प्रोफेसरों को पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं के लिये कुछ अधिक समय मिल सकेगा।

इनके साथ ही कुछ अन्य बातों की आवश्यकता भी है। प्रोफेसरों (और व्याख्याताओं के भी) के चयन में पूर्ण पारदर्शिता होनी चाहिये और उम्मीदवारों को उनकी शोध प्रतिभा के लिये परखा जाना चाहिये। विशेषतौर पर प्रोफेसरों की नियुक्ति का आधार ही उनके पूर्व शोध की उच्च गुणवत्ता तथा पैनी शोध दृष्टि होनी चाहिये। ऐसा इसलिये कि प्रोफेसर ही विभाग में शोध को दिशा देने का कार्य कर सकते हैं। वास्तव में प्रत्येक विश्वविद्यालय को अपने विभिन्न विभागों को शोध के एक क्षेत्र विशेष के विकास के लिये प्रेरित करना चाहिये ताकि वह उनकी पहचान बन सके। यह दूसरी बात है कि साथ में अन्य प्रकार के शोध की छूट भी होनी चाहिये क्योंकि स्तरीय शोध उन्मुक्त वातावरण में ही पनपते हैं, किसी प्रकार के बंधन में नहीं। विभिन्न विषयों के लिये ऐसे कुछ शोध क्षेत्रों की संस्तुति इंडियन साइंस कांग्रेस ने अपनी 104 थी बैठक में तिरुपति में जनवरी 2018 में की है। कांग्रेस ने अंतर विषयक (interdisciplinary) शोध पर भी बल दिया है जो तर्कसंगत और स्तुत्य है।

बहुत पहले एक परंपरा थी कि प्रबंध के परीक्षण के लिये नियुक्त किये जाने वालों में एक व्यक्ति विदेशी हो। बाद में देश में ही सभी विज्ञान विषयों में विशेषज्ञ उपलब्ध हो जाने पर यह त्याग दी गई और सभी परीक्षक भारतीय होने लग गये। आजकल की परिस्थितियों में क्या यह श्रेयस्कर नहीं होगा कि पुरानी परंपरा पुनः प्रारंभ की जाय? वर्तमान में शोध निर्देशित करने वाला प्रोफेसर अधिकतर जान पहचान के व्यक्तियों की नियुक्ति करवाकर प्रबंध के लेखक को परीक्षण में उत्तीर्ण करवाने का अग्रिम प्रबंध कर लेता है। विदेशी परीक्षक होने से इस बुराई पर रोक लग सकेगी और प्रबंध की गुणवत्ता की सही पहचान हो सकेगी।

विश्वविद्यालयों में शोध के स्तर का गिरते जाना निश्चय ही चिंता का विषय है। इससे राष्ट्र की प्रगति कुंठित होगी, उद्योगों को भारतीय तकनीक मिलना दुर्लभ हो जायेगा और उच्चतम शोध प्रतिष्ठानों को प्रतिभाशाली शोधकर्त्ताओं का अभाव हो जायेगा। यह फिसलन रुकनी ही चाहिये।❑

(पूर्व सदस्य–केंद्रीय हिन्दी समिति, भारत सरकार)

जल रूपी अमृत को बचाना होगा

❑ **डॉ. अनीता मोदी**

जल, मानव की मूलभूत आवश्यकता है। कृषि और दैनिक उपयोग दोनों के दृष्टिगत जल की विशेष भूमिका है। गौरतलब है कि वर्तमान में भी गाँवों में लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कृषि के लिए मिट्टी के पश्चात दूसरा निर्णायक साधन 'जल' ही है। गौरतलब है कि वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल का 90 प्रतिशत भाग तथा सिंचाई का 40 प्रतिशत भाग भू-जल से ही प्राप्त हो रहा है। किन्तु चिन्ताजनक तथ्य है कि भूमिगत जल के अंधाधुंध एवं अनियंत्रित दोहन के फलस्वरूप देश के भू-जल पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। भूमिगत जल के उपयोग में अनियंत्रित वृद्धि होने की वजह से ही भूमिगत जल का स्तर खतरनाक सीमा तक नीचे चला गया है, जिसके दुष्परिणाम सम्पूर्ण देश को झेलने पड़ रहे हैं।

समस्त जीवों के अस्तित्त्व, पोषण एवं विकास हेतु जल आवश्यक है, इसीलिए जल को 'जीवन' या 'अमृत' भी कहा गया है। पर्यावरण विशेषज्ञ स्मिथ ने भी जल के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि 'जल दुनिया का सबसे मूल्यवान संसाधन है।' मैक्सिको में जारी संयुक्त राष्ट्र विश्व जल विकास रिपोर्ट में भी कहा गया है कि, 'प्रगति का पहिया बैलगाड़ी से लेकर आणविक ऊर्जा तक किसी भी चीज से आगे बढ़ सकता है लेकिन जीवन को पानी के बगैर आगे बढ़ाया नहीं जा सकता।' स्वच्छ, सुरक्षित व पर्याप्त पेयजल किसी भी देश के निवासियों के स्वस्थ व सन्तुलित जीवन के लिए आवश्यक है।

चिन्ता का विषय है कि जल का महत्त्व सर्वविदित होने के बावजूद हमारे देश भारत में जल संकट ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। पेयजल की कमी, दूषित जल एवं जल जनित रोगों की बढ़ती संख्या देश के लिए अभिशाप साबित हो रही है। ज्ञातव्य है कि हमारे देश की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की 16 प्रतिशत है जबकि जल संसाधनों का केवल 4 प्रतिशत भाग ही है। संयुक्त राष्ट्र की विकास रिपोर्ट में भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि जल उपलब्धता के दृष्टिकोण से भारत का स्थान 120 वाँ हैं। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण व आधुनिकीकरण जैसी प्रवृतियों ने देश में जल संकट की भयावह स्थिति उत्पन्न कर दी है। जल संकट की भयावहता के प्रति सचेत करते हुए वांशिगटन स्थित वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट ने भी कहा है कि, 'भारत में 2020 के बाद गम्भीर जल संकट पैदा हो सकता है।' देश में बढ़ते जल संकट की झलक तेजी से घटते प्रति व्यक्ति जल की औसत उपलब्धता से स्पष्ट होती है। केन्द्रीय जल संसाधन मंत्रालय के आँकड़ों के अनुसार देश में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता वर्ष 1950 में 5000 क्यूबिक लीटर थी घटकर वर्ष 2005 में 1869 क्यूबिक लीटर रह गई तथा वर्ष 2025 में यह उपलब्धता 1000 क्यूबिक लीटर रह जाने का अनुमान है। वस्तुतः यह तथ्य खतरे के आगमन का संकेत है जिसके समाधान के लिए तत्काल प्रभावी कदम उठाने की नितान्त आवश्यकता है अन्यथा यह समस्या भीषण रूप धारण कर लेगी।

विड्म्बना यह है कि एक तरफ देश में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता कम होती जा रही है वहीं

दूसरी तरफ जल की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण, कृषि क्षेत्र का विकास व विस्तार, शहरीकरण पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण व जल का विभिन्न कार्यों में दुरुपयोग जैसे कारक बढ़ती जल माँग के लिए जिम्मेदार हैं। वन क्षेत्रों की अन्धाधुन्ध कटाई, भूमिगत जल का बेतहाशा दोहन, परंपरागत जल स्त्रोतों की निरन्तर उपेक्षा, समुचित जल प्रबंधन का अभाव व जल प्रदूषण के कारण इस बढ़ती जल माँग से गम्भीर जल-संकट उत्पन्न होता जा रहा है।

जल, मानव की मूलभूत आवश्यकता है। कृषि और दैनिक उपयोग दोनों के दृष्टिगत जल की विशेष भूमिका है। गौरतलब है कि वर्तमान में भी गाँवों में लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कृषि के लिए मिट्टी के पश्चात दूसरा निर्णायक साधन 'जल' ही है। गौरतलब है कि वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल का 90 प्रतिशत भाग तथा सिंचाई का 40 प्रतिशत भाग भू-जल से ही प्राप्त हो रहा है। किन्तु चिन्ताजनक तथ्य है कि भूमिगत जल के अंधाधुंध एवं अनियंत्रित दोहन के फलस्वरूप देश के भू-जल पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। भूमिगत जल के उपयोग में अनियंत्रित वृद्धि होने की वजह से ही भूमिगत जल का स्तर खतरनाक सीमा तक नीचे चला गया है, जिसके दुष्परिणाम सम्पूर्ण देश को झेलने पड़ रहे हैं। देश में नलकूपों, हैण्डपम्पों व बोरिंगों की बढ़ती संख्या भू-जल के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लगा रही है। सतही जल की अपर्याप्तता के कारण भूमिगत जल पर निर्भरता बढ़ रही है। देश में साठ के दशक से सिंचाई के लिए भूमिगत जल का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। घरेलू कार्यों व औद्योगिक उत्पादन में भी भूमिगत जल का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा हैं। देश में भू-जल प्राप्ति हेतु निजी व्यक्तियों, किसानों व धमार्थ ट्रस्टों के द्वारा निरन्तर तीव्र गति से बोरवैल एवं ट्यूबवैलों का निर्माण किया जा रहा है जिसके कारण भू-जल का स्तर देश में खतरनाक व चिन्ताजनक स्थिति में पहुँच गया है। ड्राई-जोन एरिया में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है।

जल के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए ही वर्ष 2007 को 'जल वर्ष' घोषित किया गया। इस नीति के अन्तर्गत 'कृषि क्षेत्र' में जल की समय पर सही मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सिंचाई परियोजनाओं को समय पर पूर्ण करने तथा क्षतिग्रस्त सिंचाई परियोजनाओं की मरम्मत व सुधार की व्यवस्था करने पर विशेष जोर दिया गया। केंद्रीय भू-जल बोर्ड ने जन-जागृति कार्यक्रमों, जल-प्रबन्धन प्रशिक्षण कार्यक्रमों, भू-जल अध्ययन व वर्षा जल संरक्षण के प्रदर्शन और भू-जल पुस्तिकाओं के वितरण जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों को क्रियान्वित करके भू-जल के गिरते स्तर को रोकने की दिशा में प्रयास किये हैं।

जल की बढ़ती माँग को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि देश में बड़े पैमाने पर वर्षा जल के संचय, जल संरक्षण एवं जल के दक्ष उपयोग एवं भूमिगत जल के पुनर्भरण की व्यवस्था हेतु प्रभावी व ठोस नीति को तत्काल कार्यान्वित किया जाय। इसी भाँति, कृषि में फसलों की सिंचाई खुली नालियों द्वारा करने की बजाय सिंचाई की आधुनिक तकनीक यथा- बूँद-बूँद तथा छिड़काव पद्धति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। किसानों को मुफ्त या निम्न दरों पर बिजली-सुविधा उपलब्ध कराये जाने की वजह से भी भूमिगत जल का उपयोग अन्धाधुन्ध रूप से हो रहा है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विद्युत-शुल्कों की दर में किसानों की आर्थिक स्थिति के अनुरूप समायोजन किया जाना चाहिये। जल-संकट से प्रभावित क्षेत्रों में ऐसी फसलों व पौधों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिनको कम जल की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, भूमिगत जल के सन्दर्भ में बनाये गये विभिन्न नियमों व कानूनों का प्रभावी व सख्ती से पालन किया जाये, ऐसी व्यवस्था की जानी आवश्यक है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना के अन्तर्गत भी जल संरक्षण एवं जल संचयन कार्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए जल संकट के समाधान हेतु सतत प्रयास किये जाने चाहिए। हमें इस तथ्य को समझना होगा कि यदि जल पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं तो यह केवल मानव जाति के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जीवों व वनस्पतियों के लिए भी खतरा है। जल के समान वितरण, कुशल व दक्ष प्रयोग व जल की बचत हेतु जन-अभियानों के माध्यम से जन जागरूकता एवं सामाजिक सहभागिता उत्पन्न करके ही इस विकट समस्या का समाधान सम्भव है।

'जल ही जीवन है।' इस वास्तविकता को दृष्टिगत रखते हुए यह जरूरी है कि जल का उपयोग एक कीमती वस्तु की भाँति मितव्ययतापूर्वक किया जाय। यदि मानव ने जल को मुफ्त की वस्तु मानकर अनियंत्रित रूप से इसका दोहन किया तो बढ़ते जल संकट एवं सूखते भूमिगत जलस्त्रोतों की मार सम्पूर्ण सजीव-समुदाय को सहनी पड़ेगी। इसी भांति, देश की भौगोलिक एवं वातावरण सम्बन्धित विविधताओं को दृष्टिगत रखते हुए जल नीति समन्वित, एकीकृत व सर्वसहमति पर आधारित होनी चाहिये। जल की उपलब्धता एवं जल की आवश्यकता के मध्य सन्तुलन स्थापित करने के लिए सतत् व प्रभावी प्रयास किये जाने आवश्यक हैं। जल विद्युत परियोजनाओं, बाँधों व नहरों के निर्माण एवं औद्योगिक इकाइयों की स्थापना सम्बन्धित निर्णय लेते समय जल व पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का समुचित विश्लेषण अपेक्षित है।

परम्परागत जल-स्त्रोतों यथा-कुँए, बावड़ी, तालाब व जोहड़ आदि का पुनरुद्धार करके, उनकी तलहटी में जमे गाद को निकलवाकर उनकी भराव क्षमता में वृद्धि करना संभव है ताकि जल-संकट की समस्या का कुछ हद तक समाधान किया जा सके। वृक्षों की कटाई व वन-क्षेत्र के संकुचन पर नियंत्रण करने की दिशा में कदम उठाये जायें। इसी भाँति, ''वृक्षारोपण कार्यक्रम'' को अधिक प्रभावी बनाकर इस समस्या का हल किया जाना संभव है।

वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि समय रहते समुचित उपाय नहीं किये गये तो आने वाले वर्षों में पीने के पानी का भीषण संकट उत्पन्न हो जायेगा। इस चेतावनी को दृष्टिगत रखते हुए यह जरुरी है कि समाज का हर सदस्य जल-बचत, जल-संरक्षण व जल-प्रबंधन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे ताकि जल रूपी अमृत की एक बूँद भी निरर्थक न हो। ❑

(विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
राजकीय (पी.जी.) कॉलेज, खेतडी)

पारम्परिक कृषि भारतीय संस्कृति की परिचायक रही है। शिक्षण संस्थाओं में पर्यावरण विषय के अन्तर्गत कृषि से जुड़ी बुनियादी जानकारियों को सम्मिलित किया जाये तो विद्यार्थी कृषि आधारित जैव विविधता के संरक्षण के महत्त्व को समझेंगे और पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक होंगे। पारम्परिक कृषि द्वारा जैव विविधता संरक्षण का प्रयास करेंगे और कृषक साथियों को प्रोत्साहित करेंगे। पारम्परिक कृषि में कृषक पूर्ण आत्मनिर्भर था इसीलिये खेती को सबसे उत्तम व्यवसाय माना गया था। पारम्परिक कृषि प्रणाली की सामाजिक व्यवस्था में कृषकों की परस्पर आवश्यकतायें पूर्ण हो जाती थी।

कृषि शिक्षा एवं जैव विविधता

❑ **डॉ. रेखा भट्ट**

मनुष्य द्वारा खाद्यान्न के रूप में विविध फसलों का निरन्तर उपयोग एवं उत्पादन करते रहने से कृषि जैव सम्पदा का संरक्षण होता है। कृषि जैव सम्पदा केवल मनुष्य की खाद्यान्न आपूर्ति का ही साधन नहीं होती वरन् यह आस-पास के वातावरण का संरक्षण करके अनुकूल पारिस्थितिकी तंत्र निर्मित करती है जो मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करता है। फसलों की विविध किस्में, जंगलों में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध वनस्पतियाँ, चारागाह एवं वन क्षेत्र भूमिगत कृषि पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करती है वहीं जलीय पारिस्थितिकी तंत्र, सूक्ष्मतर जीव एवं कृषि पर निर्भर रहने वाले तथा कृषि को प्रभावित करने वाले जीव जन्तु सभी कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के आवश्यक अंग हैं। मनुष्य की भोजन के अतिरिक्त अन्य जरूरतें जैसे ईंधन, औषधियाँ, रेशा, पशुधन के लिये चारा इत्यादि भी कृषि जैव सम्पदा निर्मित करते हैं और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करते हैं।

मानव जनित वैश्वीकरण तथा औद्योगिकरण के विकास की प्रक्रिया में कृषि जैव विविधता धीरे-धीरे नष्ट होने लगी। सात दशक पूर्व भारत में खाद्यान्न सुरक्षा के लिये शुरू की गई हरित क्रान्ति, कृषि उद्योग बन गई। परिणामस्वरूप कृषि द्वारा खाद्यान्न आपूर्ति का लक्ष्य व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में परिणत हो गया। तात्कालिक सरकार द्वारा कृषि में खाद्य प्रणाली नीति, विपणन और औद्योगिक पेटेंट जैसे अन्तरराष्ट्रीय मानक स्थापित किये गये, जिनसे कृषक लगातार एक ही प्रकार की फसल के उत्पादन के लिये प्रेरित हुए। एक ही प्रकार की फसल विकसित होने से उसका उपयोग व्यापक स्तर पर होने लगा तथा स्थानीय फसलों का प्रयोग बन्द हो गया। इस प्रकार कई फसलों का उत्पादन नहीं होने से, अनेक स्थानीय प्रजातियाँ विलुप्त हो गई।

भारत में जहाँ मुख्य फसलों के तौर पर चावल, अरहर, आम, हल्दी, गन्ना आदि की 50,000 किस्में उत्पन्न होती है। वहाँ वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धी फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देते रहने के कारण, इनकी एक ही किस्म के उत्पादन तक सीमित कर दिया गया।

पारंपरिक धान के खेतों में केवल धान ही नहीं, अनेक फसलों की विविध प्रजातियाँ पाई जाती थीं जो उस समय के आदिवासी व अन्य जनजाति समुदायों के आहार के रूप में प्रयुक्त की जाती थी, किन्तु आधुनिक धान की खेती में

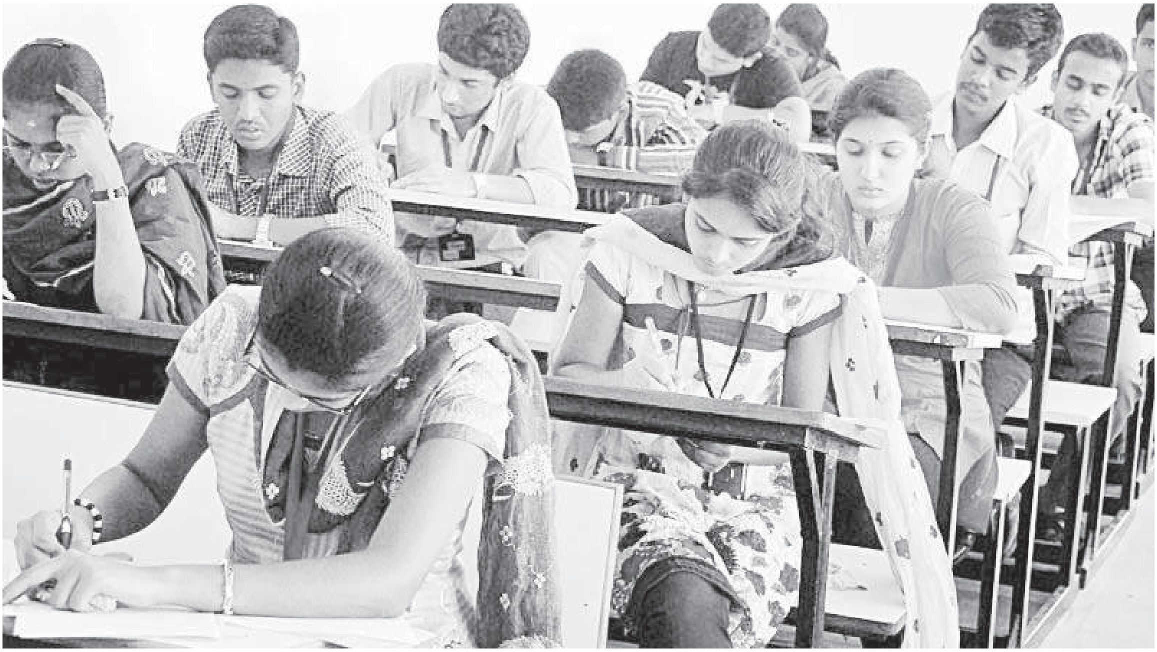

रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के प्रयोग से मृदा के सूक्ष्म जीव, वनस्पति व जन्तु नष्ट हो जाते हैं। ये प्रदूषणकारी पदार्थ जल के माध्यम से जल स्रातों में पहुँच कर जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को असंतुलित कर देते हैं। कृषि आधारित पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ने से अनेक पर्यावरणीय आपदायें उत्पन्न होती है, जैसे सबसे अधिक प्रचलित कीटनाशक डी.डी.टी., खाद्य शृंखला के माध्यम से पक्षियों के आहार में पहुँचता है और यह पक्षियों की आबादी घटाने का प्रमुख कारक माना गया है। रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से अम्ल वर्षा की संभावना बढ़ जाती है और जल स्रोतों के जल का अम्लीकरण जलीय जीवों के लिये खतरा उत्पन्न करता है।

भारत जैसी भौगोलिक विविधता विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती, इसी कारण भारत में अत्यन्त विशाल और समृद्ध जैव सम्पदा पायी जाती है। विशेष रूप से भारत के पश्चिमी घाट तथा पूर्वी हिमालय जैव विविधता के दो प्रमुख केन्द्र माने जाते हैं। भारत के उष्ण-कटिबंधीय वनस्पति क्षेत्र भारत की वनस्पतियों के कारण जैव विविधता के स्रोत है।

देश की कुल वनस्पति सम्पदा का 30 प्रतिशत भाग स्थानीय वनस्पतियों का है। इनमें से 167 प्रजातियाँ फसलों के रूप में उपयोगी है। इस प्रकार कृषि जैव विविधता प्रदान करने वाली फसलों की विविध किस्मों की संख्या के आधार पर भारत का विश्व में सातवाँ स्थान है।

आधुनिक कृषि में 90 प्रतिशत से अधिक फसलों की प्रजातियाँ खेतों से लुप्त हो चुकी है और 12 फसलों की प्रजातियाँ प्रभुत्व में है जिनमें से भी मात्र 4 फसलों धान, गेहूँ, मक्का और आलू की प्रजातियाँ अस्तित्व में है। खेती के 50 प्रतिशत क्षेत्र पर गेहूँ व धान की अधिक पैदावार देने वाली किस्में, जिन्हें HYV (High Yield Variety) फसलें कहा जाता है, उनका अधिग्रहण है।

फसलों की HYV किस्म, पारम्परिक प्रजातियों और उनके जंगली प्रकारों के अनुवांशिक भागों से ही विकसित की गई है। ये संकर प्रजातियाँ दीर्घजीवी नहीं होती एवं कुछ वर्षों में इनकी उत्पादकता नष्ट हो जाती है। HYV फसलों में रोग प्रतिरोधक क्षमता नहीं होने व कीटों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होने के कारण इनमें अधिक मात्रा में कीटनाशकों का प्रयोग होता है। इनके बीजों की उत्पादन क्षमता नष्ट हो जाने के कारण, किसान फसल से उत्पन्न बीजों को संरक्षित करके नहीं रखा सकता। HYV फसलें सिंचित क्षेत्रों में ही अच्छी उपज देती है अत: सिंचाई की अतिरिक्त व्यवस्था, श्रम एवं खर्च बढ़ जाते हैं। एक ही प्रकार की फसलों में एक समान पोषक तत्त्वों (उर्वरकों) का प्रयोग होता है किन्तु मृदा के सतही पोषक तत्त्वों की कमी को रासायनिक उर्वरकों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। अत: HYV फसलों की प्रारम्भिक पैदावार किसान के लिये लाभप्रद हो सकती है किन्तु उत्तरोत्तर उपज में उर्वरकों और कीटनाशकों की आवश्यक मात्रा बढ़ती जाती है। नए बीज, उर्वरक और कीटनाशकों की कीमतें भी लगातार बढ़ती जाती है। इस कारण अनेक सरकारी अनुदानों, ऋण प्रदान करने व ऋण माफ करने की योजनाओं के बावजूद

किसान की सरकार एवं निजी एजेन्सियों पर आर्थिक निर्भरता बढ़ती जाती है।

HYV फसलों से अधिक पैदावार देने का प्रलोभन देकर मल्टीनेशनल कम्पनियों (जो महँगे बीज, उर्वरक, कीटनाशक व तकनीकी उपलब्ध करवाती है) द्वारा किसानों के निवेश से लाभ प्राप्त करने का बहुत बड़ा माध्यम है। किसानों को इस तथ्य से परिचित होना चाहिये और पुनः पारम्परिक खेती की ओर लौट कर समृद्ध होने का प्रयास करना चाहिये।

पारम्परिक कृषि में किसान पूर्ण आत्मनिर्भर था इसीलिये खेती को सबसे उत्तम व्यवसाय माना गया था। पारम्परिक कृषि प्रणाली की सामाजिक व्यवस्था में परस्पर आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती थी।

पारम्परिक कृषि भारतीय संस्कृति की परिचायक रही है। शिक्षण संस्थाओं में पर्यावरण विषय के अन्तर्गत कृषि से जुड़ी बुनियादी जानकारियों को सम्मिलित किया जाये तो विद्यार्थी कृषि आधारित जैव विविधता के संरक्षण के महत्त्व को समझेंगे और पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक होंगे। पारम्परिक कृषि द्वारा जैव विविधता संरक्षण का प्रयास करेंगे और कृषक साथियों को प्रोत्साहित करेंगे।

पारम्परिक कृषि में कृषक पूर्ण आत्मनिर्भर था इसीलिये खेती को सबसे उत्तम व्यवसाय माना गया था। पारम्परिक कृषि प्रणाली की सामाजिक व्यवस्था में कृषकों की परस्पर आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती थी।

पारम्परिक फसल पुनरावर्तन तकनीक और परती अवधि तकनीक के प्रयोग से फसल के पोषक तत्त्वों का प्रबन्धन हो जाता था। पारम्परिक खेती में निविष्ट पोषक तत्त्व अकार्बनिक उर्वरक, हरी खाद, कम्पोस्ट, खनन किये गये लवण आदि भूमि की उर्वरा शक्ति व क्षारांश (pH Value)को उचित मात्रा में बनाये रखते हैं। फसल चक्र के अनुसार निश्चित क्रम में निश्चित अवधि में उपजाने से प्रत्येक ऋतु में फसल के अनुकूल वातावरण स्वतः उपलब्ध हो जाता है। तापमान, नमी आदि उचित स्तर पर बनाये रखने के लिये अतिरिक्त साधन नहीं जुटाने पड़ते। अनुकूलन के कारण फसलों में रोगों की रोकथाम करने के लिये अतिरिक्त व्यय करने की आवश्यकता नहीं होती। अधिक उत्पादकता व प्रतिरोधकता के कारण पारम्परिक अनाज की विभिन्न किस्में देशज जैव विविधता को बनाये रखती है। अनाज की अनेक पारम्परिक तथा जंगल से प्राप्त प्राकृतिक प्रजातियों में रोग प्रतिरोधी, कीटरोधी एवं अन्य उपयोगी जीन्स (genes) होते हैं जो आधुनिक HYV फसलों में सुधार कर के नई प्रकार की उन्नत किस्में विकसित करने में अनुवांशिक योगदान दे सकते हैं। जैसे भारत में प्राचीनकाल से प्रयोग किये जा रहे अनाज की किस्म है–चीणा। इसका 100 वर्षों तक बिना किसी परिरक्षण के भण्डारण किया जाता था क्योंकि इसमें किसी प्रकार के घुन व कीड़े नहीं लगते। इसी तरह मोटे अनाज की अन्य किस्में राजस्थान के मेवाड़ प्रदेश में गेहूँ के विकल्प के रूप में प्रयुक्त होती थी जैसे, सामा, कुलथ, माल, जौ, बाजरा, कांगणी, भूरा चावल, ज्वार आदि। इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा पौष्टिक व औषधीय गुणों से विलक्षण गुणवत्ता के कारण, इन अनाजों को भविष्य में संरक्षित रखने की आवश्यकता महसूस की गई। आने वाली पीढ़ियाँ भी इन अनाजों की गुणवत्ता का लाभ उठा सकें इस दृष्टि से मेवाड़ में पर्व मनाने की शुरूआत की गई जिसे 'तारना त्रयोदशी पर्व' कहा जाता था। शुक्ल पक्ष, बुधवार एवं अखण्ड तेरस के शुभ संयोग पर व्रत रखने तथा पारम्परिक तेरह अनाजों के सम्मिश्रण से बने भोजन का आहार करने की परम्परा थी। इस तरह के त्योहार व उत्सव भारत में मनाये जाने की परम्पराएँ प्राचीन काल से चली आ रही है। इनका मन्तव्य है दुर्लभ हो सकने वाले अनाज की प्रजातियों को धीरे-धीरे दैनिक आहार के रूप में उपयोगी बनाया जाये।

कृषि सम्बन्धी शिक्षा में विद्यार्थी को इन तथ्यों से परिचित होना चाहिये कि देशज जैव विविधता को बनाये रखने में पारम्परिक फसलों की उपज तथा HYV फसलों की तुलना में पारम्परिक अनाज की विविध किस्में है जो अधिक उत्पादक, प्रतिरोधकता और गुणवत्तापूर्ण है। उच्च शिक्षण संस्थानों में ऐसे अनाजों की भारत में लुप्तप्राय प्रजातियाँ है, उनका अनुवांशिक योगदान प्राप्त करने और उन्नत किस्में विकसित करने में शोध व अनुसंधान को बढ़ावा दिया जा सकता है।

जैव विविधता संरक्षण कानून में विदेशी मानकों को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल मानकों से प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता है ताकि कृषक पारम्परिक खेती के लिये प्रेरित किये जा सके। पारम्परिक कृषि के सकारात्मक परिणाम देने पर कृषकों को पुरस्कृत करना, पारम्परिक कृषि के लिये पर्याप्त साधन सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर कृषक संरक्षण प्रदान करने की योजनाएँ क्रियान्वित होने से कृषकों में भविष्य की असुरक्षा का भय नहीं रहेगा। कृषकों को उचित मार्गदर्शन के लिये गाँवों में कृषि सहायता केंद्र मिल जायें तो वे पारम्परिक कृषि में तकनीकी का उपयोग और पारम्परिक खेती से उन्नत अनाज की किस्में प्राप्त कर सकते हैं। अनाज की अनेक गुणवत्तापूर्ण किन्तु संकटग्रस्त प्रजातियाँ हैं जिनका व्यापक स्तर पर उत्पादन करके उन्हें वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धी अनाज के रूप में स्थापित किया जा सकता है। ❑

(व्याख्याता, रसायन विज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

J. K. COLLEGE
OF SCIENCE & RESEARCH TECHNOLOGY
BHARATPUR
जे.के. कॉलेज
बृज विश्वविद्यालय से बीएससी
प्रथम टॉपर
प्राची चौधरी
(1221/1350)
B.Sc.
English Medium
Separate Batch
बृज विश्वविद्यालय से बीएससी
फाइनल प्रथम टॉपर इंगलिश मीडियम
प्रियंका मदेरणा
(406/450)
सभी जातियों के विद्यार्थियों को 5000 से 80000 रूपये तक
वार्षिक छात्रवृति योजनायें।
भरतपुर का सबसे बड़ा व सर्वश्रेष्ठ निजी महाविद्यालय
B.A.
B.Sc.
सर्वश्रेष्ठ रिजल्ट देने वाला एकमात्र
महाविद्यालय जहां ट्यूशन की आवश्यकता नहीं
डायरेक्टर
अरुण गुप्ता
नीमदा गेट बाहर, काली बगीची के पास ,भरतपुर
मो. 9413944445, 9414282944

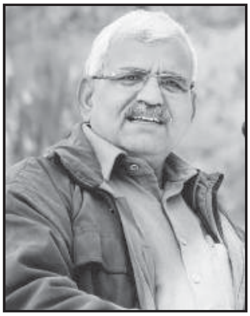

*भारतीय जीवन-दर्शन में कर्मवाद, भाग्यवाद के साथ धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, उपकार-अपकार आदि की सम्यक् गवेषणाएँ उपलब्ध हैं। पश्चिमी विचार के प्रभाव से भारतीय कर्मवाद में भौतिकता का समावेश हुआ है जिसमें अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देने के भारतीय भाव का क्षरण हुआ है। श्री हनुमान सिंह जी ने **'कुटुम्ब प्रबोधन'** के अध्याय-5 **'अवतार कथा-1'** में इस विमर्श को सरस संवाद शैली में प्रस्तुत किया है। - सम्पादक*

अवतार कथा-1

अपने यहाँ की संस्कृति में कृतज्ञता ज्ञापन कर्त्तव्य माना गया है। किसी के उपकार को अभिव्यक्त करने का बीज मंत्र यदि कोई है तो वह है 'माँ'। अत: हिन्दू संस्कृति में सभी उपकारक तत्त्व मातृ श्रेणी में आते हैं, वंदनीय हैं। धरा और धेनु भी मातृ रूप वंदना के पात्र हैं। संसार में कोई भी कार्य बिना कारण नहीं होता और कोई भी कार्य व्यर्थ या निरर्थक नहीं होता। इस धरती पर जीव-सृष्टि का हेतु है, और इसमें बाधा या उद्देश्य के विपरीत कृति से धरा अकुलाती है, इसे धरती पर बोझ बढ़ना कहते हैं। मूक धरा इसकी अभिव्यक्ति दूसरी माता, जिसे सर्वदेवमयी कहा है, के माध्यम से करती है, वह है धेनु। दोनों की पीड़ा की अनुभूति और अभिव्यक्ति समान है, यह यहाँ भाव है।

''**ब**ड़ी देर भई नंदलाला, तेरी राह तके ब्रजबाला।''

नेहा भजन गुनगुना रही थी।

नेहा के मामा का बेटा विक्की आया हुआ था। नाम तो उसका अच्छा सा है, पर कान्वेन्ट में पढ़ा होने के कारण उसे विक्की सम्बोधन में आधुनिकता लगती है। वह नास्तिक है या आस्तिक उसे ही पता नहीं पर मिशनरी स्कूल की नकल में सदैव सीने पर क्रॉस बनाता रहता है तथा कल्पित क्रॉस को आँखों से छुआकर होठों से चूमता रहता है। उसके हाथ में कल्पित क्रॉस है, इसका न उसे पता है, न जानने की इच्छा, पर भारतीय परम्पराएँ पिछड़ेपन की प्रतीक हैं, इस विषय पर उसका विश्वास है इतना ही नहीं है, इन तथाकथित पोंगापंथी-पुराण पंथी मान्यताओं की व्यंग्य मिश्रित आलोचना के लिए वह अपनी संचित ऊर्जा का विनियोग करने के लिए तत्पर रहता है। फिर नेहा को छेड़ने में तो उसे अतिरिक्त आनन्द आता है, इसलिए उसे बोलना ही था। नहीं बोलता तो आश्चर्य होता। कोढ़ में खाज कि वह आजकल अमेरिका जाने के लिए 'स्पोकन इंग्लिश' की 'क्लासेज ज्वाइन' कर रहा है। विक्की बोला-

''व्हाट इज दिस नन्द लाऽऽला नेहा? इण्डिया की यही तो प्रॉब्लम है, खुद कुछ करता नहीं, गॉड को कॉल करता रहता है। गॉड क्या तुम्हारा सर्वेण्ट है? इण्डिया में, यू नो (you know), एक्चुअली क्या है ना, यू से (you say) वर्क कल्चर नहीं है। गॉड करेगा आकर सब!!''

नेहा उसकी आदत जानती थी। उसे उसी की शब्दावली में उत्तर देती थी। बोली-

''प्रेषित और पुत्र के आने पर कभी टिप्पणी की है? उनके आने पर ऐतराज नहीं तो ईश्वर के बुलाने या आने पर क्यों?''

''नूरी और निक्की पर कमेंट नहीं किया, सो नेहा इज अबॉव कमेण्ट, यह कैसा तर्क है?'' विक्की हार कैसे मानता।

संघ मित्र भी बीच में कूद पड़ा- ''बात तो कुछ-कुछ ठीक ही है दीदी। प्रश्न से घबरा क्यों रही हैं।''

''हाँ-हाँ, फेस द चैलेंज।'' विक्की ने भी पुछल्ला जोड़ा।

नेहा ने संघ मित्र की ओर पलटकर कहा- ''तुम जो प्रार्थना में कहते हो- 'त्वदीयाय कार्याय बद्धा कटीयम्' तो ईश्वर और उसके अवतार को मानते हो कि नहीं?''

''हाँ संघ की प्रार्थना में कहते तो हैं, पर भगवान को आने को कहाँ कहते हैं? हम तो कहते हैं कि ''प्रभु! हम तुम्हारा काम करने में समर्थ हों, इसका आशीर्वाद दे। काम तो हम कर लेंगे क्योंकि हमने तेरे ही कार्य के लिए कमर कसी है।'' संघ मित्र ने उत्तर दिया।

पिताजी उनका यह वार्तालाप सुन रहे थे। अधूरा ज्ञान तो घातक होता ही है, अपरिपक्व तर्क प्रणाली से निकले परिणाम हार से हीनता बोध और परास्त करने के भाव से अहंकार की सृष्टि करते हैं। विचार को ठीक दिशा देना बड़ों का काम है। अत: पिताजी भी बच्चों के वार्तालाप में शामिल होते हुए बोले- ''संघ मित्र बेटा, ईश्वर का काम तुम करने को तत्पर हो, अच्छा है। पर शाखा में प्रार्थना पर चर्चा करते समय ईश्वर का कार्य क्या है? और वह इसे कैसे करता है? यह

चर्चा भी हुई क्या?''

''हाँ, चर्चा तो हुई थी और बौद्धिक में भी भाईसा'ब ने गीता के श्लोक बताये थे कि ईश्वर किस कार्य के लिए अवतार लेता है।'' संघ मित्र ने सोचते हुए कहा।

''श्लोक याद है?'' पिताजी ने आह्वान की तरह संक्षेप में कुरेदा।

''हाँ मुझे याद है, महाभारत सीरियल में आते थे ना! मैं सुनाऊँ।'' शिवम्, जो अब तक चुप था, अवसर पाकर बोल उठा। सुनाने के आग्रह या आदेश की उसे अपेक्षा नहीं थी, स्मृति प्रदर्शन के अवसर की प्राप्ति ही महत्त्व की थी। उसने उसी दूरदर्शन सीरियल की तर्ज पर गाना शुरू किया–

''यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।''

''शाबाश शिवम्! अब तुम्हें नित्य गीता-स्वाध्याय का भी क्रम बनाना चाहिए। गीता के चौथे अध्याय के ये श्लोक क्रमांक सात व आठ हैं। वहाँ से इनका अर्थ पढ़कर सुनाओ।''

शिवम् पूजा-गृह से गीता उठाकर लाते हुए मार्ग में ही पन्ने पलटते-पलटते पुनः कक्ष में आकर जोर-जोर से पढ़ने लगा–

''हे भरत वंशी अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने-आपको प्रकट करता हूँ।

साधुओं की रक्षा करने के लिए, दुष्टों का नाश करने के लिए और धर्म की पुनर्स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।''

पाठ करते समय शिवम् का अनुतान और शारीरिक चेष्टाएँ दूरदर्शन पर आए महाभारत के पात्रों के अनुरूप ही थी।

विक्की बीच में ही बोला– ''गीता में तो कर्म की बात कही है– 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।' भगवान ही आकर सब करेंगे और हम त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!! ही करेंगे तो कर्म-सिद्धान्त का क्या होगा?'' विक्की ने जे.एन.यू. के तथाकथित प्रगतिशील की तरह तल्ख तर्क उछाला।

पिताजी ने कहा, ''श्रीराम जब सागर से मार्ग देने की माँग कर धरने-अनशन पर बैठने की तैयारी कर रहे थे, तब तरुण शेषावतार लक्ष्मण ने भी ऐसा ही तर्क किया था कि कायर मन वाले तथा आलसी लोग ही देवों का अवलम्बन लेते हैं–

कादर मन कहुँ एक अधारा
दैव-दैव आलसी पुकारा''

नेहा बोली– ''गीता में भी या अन्यत्र भी केवल भाग्य या देव पर आश्रित रहने की बात नहीं कही है। वहाँ भी तो प्राथमिकता अपने प्रयत्नों को ही है। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं ही कहा है कि 'किसी कार्य की सिद्धि में अधिष्ठान अर्थात् जिस सिद्धान्त के आश्रय से कर्म किये जाएँ, और कर्त्ता तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के करण अर्थात् साधन और इन साधनों के द्वारा की जाने वाली अलग-अलग चेष्टाएँ तथा अंतिम पाँचवाँ हेतु देव है। किन्तु दैव का तात्पर्य भी पूर्वकृत शुभ अशुभ कर्मों के संस्कारों का नाम है –

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।।

एक सुभाषित में भी कहा है कि देवता हाथ में लाठी लेकर चरवाहे की तरह रक्षा नहीं करते, वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उसके अनुकूल बुद्धि प्रदान कर देते हैं।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यन्तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्।।

पिताजी – ''ठीक है नेहा! इसीलिए अवतार का सत्य मर्म समझना चाहिए। इसका तात्पर्य अकर्मण्यों की सहायता के लिए कोई बाहरी शक्ति क्रियाशील होती है, ऐसा समझना उचित नहीं है। सामान्यतया यह कहा और देखा जाता है कि सज्जन शक्तियों की तुलना में दुष्ट या आसुरी शक्तियाँ अधिक संगठित व क्रियाशील होती हैं। क्योंकि उन्हें अपनी उत्पाति प्रवृत्ति के क्रियान्वयन की इच्छा व नष्ट होने, मारे जाने का भय संगठित प्रयत्न के लिए सहज प्रेरित करता है। एक नेतृत्व को स्वीकार करना और उसके अनुगामी होकर कार्य करने का संकट बुद्धिजीवियों में ही अधिक होता है।''

नेहा ने बीच में ही प्रश्न किया– ''पिताजी! विद्वानों में ही यह संकट क्यों होता है?''

''विद्वान लोग अहंकार या विद्वता के अभिनिवेश में अपने मत को ही सम्मत मानने लगते हैं और उसकी पुष्टि करने वालों को ही विचारक। विमत को स्वीकार करना सामान्यतः कठिन होता है। दुष्ट लोग सोचते तो दुष्टता ही नहीं करते, अतः ये आसानी से एकत्र हो जाते हैं। विद्वान् सज्जन के साथ एक समस्या है– वे सबको अपने जैसा ही समझते हैं अतः सज्जनों में परस्पर अपनायी जाने वाली आचार-नीतियों का व्यवहार वे दुष्टों के साथ करने ही नहीं लगते, वैसे प्रत्युत्तर की इच्छा भी करते हैं। 'सठ सन विनय, कुटिल सन नीति' चलती नहीं है, यह तुलसीदास जी ने भी कहा है।''

विक्की– ''लेकिन प्रश्न यह नहीं है कि सज्जन या दुर्जन क्या करते हैं? उनके लिए तो संविधान, उसके कानून, पुलिस प्रशासन हैं। किन्तु स्वयं अकर्मण्य कीर्तन करते रहें कि प्रभु आकर हमारा उद्धार करेंगे और ग्रंथ भी इसका समर्थन करते हैं, तब क्या यह अवतारवाद देश के लिए हानिकारक नहीं है? तुलसी दास जी ने ही तो लिखा है–

जब-जब होइ धरम के हानी।
बाढहिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।''

पिताजी- ''विक्की! तुमने जो उद्धरण दिये हैं वे बिल्कुल सही हैं, किन्तु इस अवतार की पूर्व-पीठिका का विचार किया है क्या? यहाँ भी बहुवचन में 'विविध शरीर' कहा है, यह ध्यान दिया है? रामावतार की कथा है कि सभी देवगण वानर यक्ष समुदाय में जन्म लेकर प्रभु-लीला में सहकारी होने के लिए पूर्व में ही आ गये थे। इस कथा को यथावत स्वीकार न भी करें तो इसका भावार्थ क्या है? सभी सज्जन शक्तियाँ जाग्रत, संगठित होकर ईश्वरीय कार्य के लिए एक नेतृत्व में अग्रसर होती हैं। समाज के बुद्धिजीवियों-विद्वानों, धेनु अर्थात् आर्थिक सम्पन्नता, सुर अर्थात् दैवीय विचार तथा शक्तियों और धरा अर्थात् वह भूमि जिस पर इन सबका संवर्धन हो सके, इनके लिए सुरक्षा-व्यवस्था की सदैव आवश्यकता होती है। समाज में बंधुता, समता, समरसता की स्थापना, यह ईश्वरीय कार्य ही है और इसके लिए समाज में दिव्य आत्माओं का अवतरण होना चाहिए या नहीं?''

''होना तो चाहिए।'' झिझकता सा, किन्तु बे-मन से विक्की बोला।

''होना चाहिए, यह मानते हो तो सब ऐसे होते नहीं यह भी मानना पड़ेगा। सब में से कुछ तो स्वभाव से ही दुष्ट प्रवृत्ति के होते हैं, वे कुत्ते की पूँछ की तरह कभी सीधे नहीं होते, ऐसा संविधान को भी मानना पड़ता है अन्यथा उम्रकैद व फाँसी की सजा का प्रावधान नहीं होता। अधिसंख्य लोग हवा के साथ चलते हैं। परिवेश या प्रबोधन से ये बदलते रहते हैं। इन्हें समाज हित में सक्रिय करना ही सज्जन शक्ति का संगठन है तथा इन्हें दुष्टों द्वारा उत्पन्न बाधाओं से बचाना ही सज्जन शक्ति का संरक्षण है। जब समाज में दुष्ट शक्ति का दमन, सज्जन शक्ति का संरक्षण हो जाता है तब धर्म राज्य स्थापित हुआ माना जाता है जिसमें अधिकारों के लिए नारे नहीं लगते, क्योंकि सब अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। ईश्वरीय कार्य के ये ही तो लक्षण गीता में बताये हैं। इसमें अकर्मण्य होने का कहाँ प्रश्न है? इस अवतरण के बाद तो आशा का नव संचार, परिवर्तन का उत्साह तथा कर्मण्यता का वातावरण निर्मित हो जाता है।'' पिताजी के इस धारा प्रवाह विवेचन को सब शांत भाव से सुन रहे थे।

पिताजी ने पुनः कहना प्रारम्भ किया ''हम कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में वही परमात्मा वास करता है। कण-कण में भगवान है। इस दृष्टि से तो किसी अवतार की आवश्यकता ही नहीं। किन्तु यह भी अनुभव की बात है कि सबका व्यवहार दैवीय नहीं है। इसका अर्थ उनमें परमात्म तत्व लुप्त है, ऐसा नहीं है, इतना ही है कि वह परमसत्ता अविद्या के आवरण या प्रारब्ध के संस्कार के कारण गुप्त या सुप्त है। जिस देह में अपने कर्म एवं तपोबल के संचित कोष से यह देवत्व अपनी समस्त कलाओं के साथ अभिव्यक्त हो जाता है, उसे ही उस ईश्वर का देह धारण करना कहते हैं -

ब्यापक बिस्वरूप भगवाना।
तेहि धरि देह चरित कृत नाना।।

दैवीय सम्पदा का पुंजीभूत रूप किसी देह में प्रकट न हो तो पिता की अनुकूलता, प्रतीकात्मक वन-गमन हेतु रथ प्रदान करने के उपरान्त भी सब सुख वैभव का परित्याग कर वल्कल- वस्त्र धारण करना, नंगे पैर जंगल-जंगल संचरण व जन-जागरण एवं शक्ति संचय कर रावण जैसी महाशक्ति से टकराने का दुस्साहस कोई कर सकता है क्या? कोई सैनिक देश की रक्षा के लिए प्राण देने, देश की स्वाधीनता के लिए फाँसी के फँदे पर झूलने, 'नर सेवा नारायण सेवा' के लिए अपना जीवन समर्पित करने के लिए कोई तत्पर हो सकता है क्या? ये सब प्रभु के अवतार नहीं हैं क्या? अवतार यानि किसी असुर को मारने के लिए प्रवृत्त होना मात्र नहीं है। तुलसीदास जी इसी की और संकेत करते हुए कहते हैं-

हरि अवतार हेतु जेहि होई।
इदमित्थं कहि जाइ न सोई।।''

नेहा बोली - ''पिताजी! अवतार प्रकरण के अन्तर्गत पुराणों में यह वर्णन आता है कि अधर्म से व्याकुल धरती धेनु का रूप धारण करके व्यथा-कथा कहती है तब अवतार होता है-

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी।
परम सभीत धरा अकुलानी।।
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी।
गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।।

फिर इसका क्या अर्थ है?''

''अपने यहाँ की संस्कृति में कृतज्ञता ज्ञापन कर्त्तव्य माना गया है। किसी के उपकार को अभिव्यक्त करने का बीज मंत्र यदि कोई है तो वह है 'माँ'। अतः हिन्दू संस्कृति में सभी उपकारक तत्त्व मातृ श्रेणी में आते हैं, वंदनीय हैं। धरा और धेनु भी मातृ रूप वंदना के पात्र हैं। संसार में कोई भी कार्य बिना कारण नहीं होता और कोई भी कार्य व्यर्थ या निरर्थक नहीं होता। इस धरती पर जीव-सृष्टि का हेतु है, और इसमें बाधा या उद्देश्य के विपरीत कृति से धरा अकुलाती है, इसे धरती पर बोझ बढ़ना कहते हैं। मूक धरा इसकी अभिव्यक्ति दूसरी माता, जिसे सर्वदेवमयी कहा है, के माध्यम से करती है, वह है धेनु। दोनों की पीड़ा की अनुभूति और अभिव्यक्ति समान है, यह यहाँ भाव है। 'धर्म की अतिशय हानि' देखकर 'धरा अकुलाति है' तब 'परम सभीत' होकर 'धेनु रूप' धारण करती है। जिनसे हमारे शरीर और सृष्टि का वितान तना है उन पंच तत्त्वों का प्रदूषण मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए करने लगे, 'गो-माँस-भोज-समारोह' (बीफ फेस्टीवल) को केवल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर करें, जबकि पेट भरने के बहुत विकल्प हों, तो यह अधर्म का प्रतीक नहीं है क्या? तो अधर्म बढ़ रहा है, इसका प्रतीक एवं पैमाना धरा व धेनु के प्रति व्यवहार है। यह अकुलाहट पर-पीड़ा से द्रवित होकर है, इससे बड़ा परोपकार का उदाहरण क्या होगा?''

बाहर से चुप किन्तु अवसर की

तलाश में कसमसाते विक्की का धैर्य जवाब दे गया, बीच में ही बात काटकर बोला-

''तो आपका मानना है कि अवतारों के मंदिर बनाकर पूजना उचित है।''

''प्रश्न उचित-अनुचित का नहीं है। मंदिर बनाना या नहीं, मंदिर जाना या नहीं- इसमें भी भिन्न मत हो सकते हैं।'' पिताजी ने कहना शुरू ही किया था कि विक्की पुनः बोल पड़ा-

''आपका मत क्या है, मैं यह जानना चाह रहा हूँ।''

''मैं वहीं आ रहा हूँ, धैर्य तो रखो। मेरा मानना है कि जिन्हें हम अवतार या लोक-देवता, महापुरुष मानते हैं, उनके गुणों का बखान प्रेरणा के लिए है। उनकी लीला का पठन-श्रवण स्वयं में अनुकरण की पात्रता तथा सत्कर्मों की सिद्धता प्राप्त करने के लिए है। यह प्रेरणा आपको मंदिर में मिलती है या मंदिर के बाहर, यह प्रत्येक व्यक्ति के स्वविवेक व मनोरचना पर निर्भर करता है। किन्तु मंदिर या लीला ग्रंथ केवल कर्मकाण्ड या परलोक में सद्गति व पुण्य लाभ के स्रोत बनें तो यह अस्वीकार है। यह होने की सम्भावना पर्याप्त रहती है, अतः इसका ध्यान रखकर जन-मन-संस्कार की व्यवस्था करना आवश्यक रहता है। मंत्र चालित खिलौने की तरह मुण्डी हिलाते हुए सुन्दर काण्ड का पाठ करें, ध्वनि विस्तारक लगाकर जगत को सुनायेंऔर स्वयं का जीवन सुन्दर न बन सके तो लाभ क्या? यह वैसा ही है जैसे गधे पर लदा चंदन। उसके लिए वह भार से अधिक कुछ नहीं है। दूसरी ओर 'अवतारवाद' के विरोध की झौंक में हम दिव्य लोक-लीलाओं के अनुशीलन से ही दूरी बना लें तो यह भी स्वीकार्य नहीं है।''

विक्की के चेहरे के भावों से समाधान की संतुष्टि तो नहीं झलकती थी किन्तु सोचने की एक नई दृष्टि की स्वीकारोक्ति अवश्य प्रकट होती थी। समय की सीमा में वार्ता को विराम देना आवश्यक था। ❑

शैक्षिक महासंघ द्वारा यूजीसी रेग्यूलेशन का स्वागत

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ यूजीसी द्वारा जारी नवीन रेगुलेशन का स्वागत करता है तथा मानव संसाधन विकास मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर एवं यूजीसी अध्यक्ष का धन्यवाद ज्ञापित करता है कि उन्होंने महासंघ द्वारा प्रस्तुत सुझावों और मांगों में से कई पर सकारात्मक रुख दर्शाते हुए व्यापक शिक्षा और शिक्षक हित में रेगुलेशन में प्रावधान किए हैं। महासंघ के दृष्टिकोण से सहमत होते हुए नवीन रेगुलेशन में किए गए निम्न प्रावधानों पर महासंघ संतोष एवं प्रसन्नता व्यक्त करता है-

- पिछले रेगुलेशन में अत्यंत विवादित एपीआई पीबीएएस विदाई की गई है तथा सीएएस योजना के अंतर्गत पदोन्नति प्रक्रिया को सरल बनाया गया है।
- एमफिल और पीएच.डी. जैसी उच्चतर शैक्षिक योग्यता प्राप्त करने पर प्रोत्साहन स्वरूप दी जाने वाली वेतन वृद्धियों को महासंघ के तर्क से सहमत होते हुए पुनः प्रारम्भ किया गया है।
- उच्च शिक्षा संस्थान में शिक्षकों की ठहराव अवधि पूर्व में प्रस्तावित 7 घंटे के स्थान पर महासंघ की मांग के अनुसार 5 घंटे ही रखी गई है।
- शिक्षकों का अध्यापन कार्य भार, जो पूर्व में न्यूनतम 14 से 16 घंटे प्रस्तावित था, में से महासंघ की आपत्ति के बाद न्यूनतम शब्द हटा दिया गया है।
- लंबित सीएएस पदोन्नति प्रकरणों में एपीआई की छूट अवधि नवीन रेगुलेशन की अधिसूचना जारी होने की तिथि तक बढ़ा दी गई है।
- महासंघ के निरंतर दबाव के चलते अंततः ओरिएंटेशन /रिफ्रेशर कोर्स में छूट की अवधि 31 दिसंबर 2018 तक की गई है।
- महाविद्यालयों में प्रोफेसर के पदों की सीमा, जो पूर्व के रेगुलेशन में थी, हटा दी गई है।
- महाविद्यालय प्राचार्य को विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त समिति की अनुशंसा के आधार पर 5 साल का एक और कार्यकाल देने की व्यवस्था की गई है।
- स्नातक व स्नातकोत्तर प्राचार्य को एक ही प्रोफेसर ग्रेड में रखा गया है तथा प्राचार्य पद का कार्यकाल पूर्ण होने पर शिक्षक को प्रोफेसर पद पर प्रोफेसर ग्रेड में रखने का प्रावधान किया गया है।
- एक रेगुलेशन से दूसरे रेगुलेशन में स्मूथ मूवमेंट के लिए 3 वर्ष का विकल्प दिया गया है।
- सभी विश्वविद्यालयों से नवीन रेगुलेशन को 6 माह के भीतर लागू करने की बात कही गई है।

इन सब शिक्षक व शिक्षा हितकारी प्रावधानों के किए जाने के बाद भी कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं जो महासंघ के लिए चिंता के विषय हैं तथा उच्च शिक्षा व शिक्षकों के व्यापक हित में जिनके विषय में शीघ्र सकारात्मक निर्णय करना अपेक्षित है -

- देशभर में उच्च शिक्षा का एक समान स्तर बनाए रखने तथा शिक्षकों की एक समान सेवा शर्तों व वेतनमान के लिए आवश्यक है कि नवीन वेतनमान लागू करने में आए अतिरिक्त वित्तीय भार का न्यूनतम 80 प्रतिशत कम से कम 5 वर्ष तक केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को पुनर्भरण किया जाए।
- उच्च शिक्षा की विशिष्टता को देखते हुए तथा सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित करने के लिए इंडेक्स ऑफ रेशनलाइजेशन न्यूनतम 2.72 रखा जाए तथा वेतन नियतन करते समय न्यूनतम गुणांक 2.67 किया जाए।
- कॅरियर एडवांसमेंट योजना के अंतर्गत महाविद्यालयों में संसाधनों एवं अवसरों की उपलब्धता की न्यूनता को देखते हुए एसोसिएट प्रोफेसर लेवल तक पीएच.डी. की बाध्यता को समाप्त किया जाए।
- फैकल्टी डेवलपमेंट प्रोग्राम के अंतर्गत पीएच.डी. आदि डिग्री प्राप्त में लगे समय को नियुक्ति एवं पदोन्नति हेतु शैक्षणिक एवं शोध अनुभव के रूप में गिना जाए।
- असिस्टेंट प्रोफेसर पद पर नियुक्ति हेतु विश्वविद्यालयों द्वारा यूजीसी रेगुलेशन 2009 को लागू करने की तिथि तक पंजीकृत अभ्यर्थियों को नेट से छूट प्रदान की जाए।
- कुलपति पद हेतु विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय में प्रोफेसर पद पर 5 वर्ष के अनुभव या 25 वर्ष के कुल अध्यापन अनुभव के प्रोफेसर को पात्र माना जाए।
- असिस्टेंट प्रोफेसर पद पर पारदर्शिता से चयन हेतु अभ्यर्थी की अकादमिक उपलब्धियों को न्यूनतम 50 प्रतिशत वेटेज दिया जाए।
- जर्नल के संपादन, कांफ्रेंस में भाग लेने , लोकप्रिय लेख आदि के लिए रिसर्च पॉइंट्स दिए जाएँ।

मध्यप्रदेश शिक्षक संघ छिन्दवाड़ा जिला अभ्यास वर्ग सम्पन्न

समाज में नैतिक मूल्यों का अभाव है, जिससे गलत घटनाएँ घट रही हैं। नैतिक मूल्य जीवंत होने चाहिए। समाज एवं बच्चों में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना, समाज की न्यूनता की पूर्ति, समस्याओं का समाधान, हर व्यक्ति में संवेदना भरने का कार्य प्राथमिक शालाओं के शिक्षक ही कर सकते हैं। बच्चों को अपना प्राथमिक शिक्षक जीवन भर याद रहता है। अतीत से आए ज्ञान को नई पीढ़ी को देने का कार्य शिक्षक करता है एवं जीवन प्रकाश को देने वाला, व्यक्ति के अंतर्मन तक पहुँचने वाला गुरु होता है। गुरु एवं शिक्षक को एक होना चाहिए। ये विचार मध्यप्रदेश शिक्षक संघ जिला छिन्दवाड़ा द्वारा रघुवंशम लॉन में आयोजित अभ्यास वर्ग में रा.स्व. संघ के महाकौशल प्रांत प्रचारक श्री रंगराजे ने विभिन्न विकासखंड, तहसील एवं जिला पदाधिकारियों को संबोधित करते हुए उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि के नाते व्यक्त किए। इस अवसर पर क्षेत्र प्रमुख किशन लाल नाकड़ा ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। कार्यक्रम का शुभारंभ छिंदवाड़ा के जिलाध्यक्ष एन. के. शुक्ला एवं सचिव संजय नागदोने ने सरस्वती पूजन एवं वंदना के बाद अतिथियों का स्मृतिचिह्न देकर सम्मानित किया। जिलाध्यक्ष एन.के. शुक्ला ने स्वागत भाषण देते हुए कहा कि संगठन की कार्य पद्धति, विचार दर्शन से अवगत कराने, प्रशिक्षित कार्यकर्ता तैयार करने एवं संगठनात्मक चर्चा हेतु यह अभ्यास वर्ग आयोजित किया गया है। कार्यक्रम के द्वितीय सत्र में क्षेत्र प्रमुख किशन लाल नाकड़ा ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के उद्देश्य, कार्य, योजनाओं एवं कार्यक्रमों के बारे में विस्तार से जानकारी दी। अभ्यास वर्ग के तृतीय और चतुर्थ सत्र को संभागीय उपाध्यक्ष विजय शुक्ला एवं संभागीय सचिव आनंद प्रकाश श्रीवास्तव ने संबोधित किया। शुक्ला ने कहा कि शिक्षक का आचरण अनुकरणीय होना चाहिए क्योंकि समाज निर्माण में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा राष्ट्रीय मीडिया कार्यशाला में प्रशिक्षित शिक्षक आनंद प्रकाश श्रीवास्तव ने संघ के पदाधिकारियों को मीडिया की आवश्यकता, मीडिया की ताकत, मीडिया के प्रकार, मीडिया की कार्य पद्धति, पत्रकार वार्ता, प्रेस क्लब, प्रेस परिषद आदि के बारे में बताते हुए न्यूज बनाने तथा मीडिया से जुड़ने के गुर भी समझाए।

कार्यक्रम के द्वितीय दिवस छिंदवाडा महाविद्यालय के प्रोफेसर अमर सिंह ने शिक्षकों को शालेय परेशानियों से निपटने के उपाय सुझाए। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् एवं राष्ट्रपति पुरस्कार से पुरस्कृत अशासकीय शिक्षक विनोद तिवारी ने पर्यावरण संरक्षण को आवश्यक बताते हुए अपने जन्मदिन पर पाँच वृक्ष लगाने का सुझाव दिया। कार्यक्रम के अंत में आभार प्रदर्शन छिंदवाडा के जिला अध्यक्ष नंद कुमार शुक्ला ने किया।

विषय से ऊपर उठकर समाज का शिक्षक बनना होगा - प्रो. जे.पी. सिंघल

हमने अपने आप को किसी एक विषय का शिक्षक बनाकर खुद को छोटा बना लिया। विषय से ऊपर उठकर हमें समाज का शिक्षक बनना होगा। हम अपनी शाला, घर परिवार का परिवेश सुधार कर समाज का परिवेश सुधार सकते हैं। हम संवादहीनता समाप्त कर छात्र के दुख सुख को जानें। स्कूलों में नियमित रहकर, किसी की कठिनाई का समाधान कर अभिनव प्रयोग करें। पूरी वसुधा कुटुंब है। जिन तरीकों से हम वसुधा का ध्यान रखते हैं, वही शाश्वत जीवन मूल्य है। उक्त विचार मध्य प्रदेश शिक्षक संघ की महाकौशल संभाग स्तरीय 'शाश्वत जीवन मूल्य की कार्यशाला' में राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो. जे.पी. सिंघल ने व्यक्त किए। कार्यक्रम को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि आचार्य कृष्णकांत चतुर्वेदी ने कहा कि मूल्य वह है जो हमें अपनी जड़ तक ले जाए। हमारा शरीर, हमारा नाम, अंत:करण की चेतना हमें पूर्वजों से प्राप्त हुई है। आगे हमारी भी चेतना, प्रकृति शाश्वत रहेगी। हमारी संपूर्ण संस्कृति राष्ट्रीय चेतना एवं राष्ट्रीय विचारधारा से जुड़ी है। शाश्वत जीवन मूल्य निष्ठा, समर्पण, दया, प्रेम, सच्चरित्रता आदि हैं। हमें अर्थ से ही धर्म की प्राप्ति होती है और धर्म का अर्थ होता है मूल्य। इस अवसर पर रामचरितमानस तथा अन्य ग्रंथों का उदाहरण देते हुए मध्य प्रदेश शिक्षक संघ के प्रांतीय महामंत्री क्षत्रवीरसिंह राठौर ने भी भारतीय संस्कृति के मूल्यों को समझाया। उन्होंने कहा कि रावण के वैद्य सुखेन ने लक्ष्मण का इलाज किया, क्योंकि राम ने उसे धर्म का रास्ता बताया था। सीता का हरण करने वाले रावण से गिद्धराज इसलिए भिड़ गया क्योंकि उसे एहसास था 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता:'।

कार्यक्रम का आयोजन वेटनरी कॉलेज ऑडिटोरियम में मध्यप्रदेश शिक्षक संघ के प्रांताध्यक्ष लक्ष्मीराम इंगले की अध्यक्षता, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो. जे. पी. सिंघल के मुख्य आतिथ्य तथा कालिदास अकादमी के पूर्व निदेशक आचार्य कृष्णकांत चतुर्वेदी, शिक्षक संघ के प्रांतीय महामंत्री क्षत्रवीरसिंह राठौर, राष्ट्रीय मीडिया प्रभारी विजय सिंह, संगठन मंत्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, क्षेत्र प्रमुख किशनलाल नाकड़ा के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। कार्यक्रम का प्रारंभ सरस्वती पूजन से हुआ। संचालन संभाग सचिव आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव एवं उपाध्यक्ष विजय शुक्ला ने किया। अतिथि परिचय एवं स्वागत भाषण जिलाध्यक्ष श्रीराम श्रीवास्तव ने दिया। आभार संभागीय सचिव असीम गौतम ने किया।

मध्यप्रदेश शिक्षक संघ की प्रांतीय बैठक में प्रान्ताध्यक्ष लक्ष्मीराम इंगले ने जानकारी दी कि प्रदेश की 318 विकासखंड इकाइयों ने शिक्षक संघ कि दो सूत्री माँगों– नियमित शिक्षकों को पदनाम एवं शिक्षा विभाग में समान केडर के लिए एस डी एम, तहसीलदार के माध्यम से ज्ञापन दिए हैं। जुलाई में ही मुख्यमंत्री जी से शिक्षक संघ का प्रतिनिधिमंडल मिलेगा। इसके बाद भी पदनाम के आदेश जारी नहीं होने पर अगस्त माह में भोपाल में आंदोलन किया जाएगा। ई अटेंडेंस लगाने के लिए शिक्षक संघ प्रदेश के हर शिक्षक को मोबाइल, सिम, मोबाइल भत्ता के साथ नेटवर्क देने की शर्त पर ई अटेंडेंस लगाने को तैयार है अन्यथा परंपरागत तरीकों से ही हाजिरी लगाएगा।

'उच्च शिक्षा में नैतिकता एवं कार्य संस्कृति' विषयक संगोष्ठी जयपुर में सम्पन्न

शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर द्वारा जयपुर के शास्त्रीनगर स्थित विज्ञान पार्क में 8 जुलाई, 2018 को 'उच्च शिक्षा में नैतिकता एवं कार्य संस्कृति' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी का शुभारम्भ मुख्य अतिथि डॉ. अरुण चतुर्वेदी, केबीनेट मंत्री राजस्थान सरकार ने माँ सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। इस अवसर पर यूजीसी के चेयरमैन प्रो. धीरेन्द्र पाल सिंह, संस्थान अध्यक्ष प्रो. जे.पी. सिंघल तथा शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर की महती उपस्थिति रही।

उद्घाटन सत्र को सम्बोधित करते हुए डॉ. अरुण चतुर्वेदी ने कहा कि अंग्रेजों ने इस देश की रीढ़ मानी जाने वाली समृद्ध शिक्षा-पद्धति को जानबूझकर कमजोर व नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जिसके कारण इसकी वर्तमान स्थिति डिग्री प्रदान करने तक सीमित हो गई। उन्होंने कहा कि माँ हमारी प्रथम शिक्षक होती है, वही हमें संस्कारवान बनाती है अतः आज की हमारी शिक्षा-पद्धति को पुनः राष्ट्रभक्ति व संस्कारोन्मुखी बनाने की महत्ती आवश्यकता है। इस अवसर पर प्रमुख वक्ता के नाते यूजीसी के चेयरमैन प्रो. धीरेन्द्र पाल सिंह ने कहा कि शिक्षक का सभ्य आचरण तथा सुसभ्य व्यक्तित्व विद्यार्थियों के मनमानस में आदर्शों की स्थापना में योग देता है। उन्होंने पं. मदन मोहन मालवीय जी का उल्लेख करते हुए बताया कि महाविद्यालय/ विश्वविद्यालय, विद्यार्थियों की नर्सरी होती है। उन्होंने शिक्षण संस्थानों में 'आनन्द विभाग' खोले जाने का मत दिया। इस अवसर पर शैक्षिक मंथन मासिक पत्रिका का विमोचन किया गया। संगोष्ठी का विषय प्रवेश प्रो. जे.पी. सिंघल ने करते हुए बताया कि वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में शिक्षक अपनी कार्य-संस्कृति से दशा व दिशा को ठीक करने का सामर्थ्य रखता है। इस अवसर पर शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने संस्थान का परिचय व उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा कि समाज आज भी शिक्षकों से ही नैतिकता अपेक्षा करता है, हमें समाज के विश्वास को बचाए व बनाए रखना है। संगोष्ठी परिचय डॉ. दीपक कुमार शर्मा ने, स्वागत भाषण डॉ. कमल मिश्रा ने व सत्र संचालन डॉ. शिवशरण कौशिक ने किया।

संगोष्ठी में दो तकनीकी सत्रों का आयोजन किया गया। प्रथम सत्र 'नैतिक मूल्यों की स्थापना में शिक्षक की भूमिका' विषय पर केन्द्रित रहा जिसमें मुख्य वक्ता प्रो. पी.सी. त्रिवेदी, पूर्व कुलपति ने कहा कि आज की शिक्षा का उद्देश्य 'सा विद्या या विमुक्तये' के स्थान पर 'सा विद्या या नियुक्तये' हो गया अर्थात् नियुक्ति (वृत्ति) आधारित शिक्षक अर्थ की मानसिकता से प्रेरित हो मात्र पाठ्यक्रम पूरा करता है।

सत्र के अध्यक्ष प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय, निदेशक केन्द्रिय हिन्दी संस्थान, आगरा ने बताया कि मौजूदा पाठ्यक्रमों में हमारी पुरातन पद्धतियों का तथा प्राचीन ज्ञान का कुछ संस्थानों में समावेश किया जाकर राष्ट्रीय जागरण में योग दें।

द्वितीय तकनीकी सत्र को संबोधित करते हुए प्रो. जे.पी. सिंघल ने कहा कि शिक्षक समाज का दर्पण होता है, उसकी भूमिका संस्कृति निर्माण के साथ आचरण से शिक्षा देने जैसे होगी तो अच्छी संस्कृति के मानदण्ड व जीवन मूल्यों की स्थापना में योगकारी होगा। अपने अध्ययन में नियमितता के साथ शिक्षार्थियों से रागात्मक संबंध स्थापित कर शिक्षक एक आदर्श कार्य संस्कृति की स्थापना कर सकते हैं। शिक्षक का आत्मविश्वास तथा ज्ञान-कौशल ही उसे चुनौतियों में साहस प्रदान करता है। इस अवसर पर डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने कहा कि कुशलतापूर्वक कर्म करना ही योग है। यह वैयक्तिक और संस्थानिक दोनों स्तरों पर लागू होने वाली कार्य-संस्कृति है। कार्य सन्तुष्टि और विद्यार्थी सन्तुष्टि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हमें शिक्षण-संस्थाओं के प्रति समर्पण भाव रखते हुए चलने पर ही हमारी कार्य-संस्कृति का निर्माण हो सकेगा। सत्र अध्यक्ष डॉ. नन्द सिंह नरुका ने इस अवसर पर कहा कि शिक्षक के रूप में जो भी कार्य हमें आर्वटित हैं उसको पूरी प्रतिबद्धता से पूरा करते हैं तभी हम हमारी कार्य-संस्कृति की बात कर सकेंगे। उच्च श्रेणी के मनुष्य के होते हैं जो अपने कर्म-स्थल पर प्रदत्त कार्य को कर्तव्य समझ कर करें।

समारोप सत्र के अवसर पर संबोधित करते हुए प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा, कुलपति पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर ने कहा कि पूरे भारत में परस्पर युद्धरत राजाओं के बीच भी नैतिकता इतनी ऊँची होती थी कि वे एक दूसरे की निर्दोष प्रजा, खेतों में काम करने वाले किसान, स्त्री-पुरुषों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाते थे, इसलिए वो संकट में भी निर्द्वन्द्व होकर काम करते थे। आज हमें उच्च शिक्षा के क्षेत्र में दो प्रकार की नैतिकताओं का प्रतिरक्षण करना होगा। पहला यह कि विद्यार्थी के विचार और व्यवहार को कैसे नैतिक बनाया जाए तथा दूसरा शिक्षक अपने ज्ञानार्जन से लेकर मूल्यांकन, शोध और अध्यापन में श्रेष्ठता कैसे स्थापित करें। सत्र की अध्यक्षता राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने की। आभार डॉ. ग्यारसी लाल जाट, सचिव, शैक्षिक मंथन संस्थान ने ज्ञापित किया। सत्र संचालन डॉ. ओम प्रकाश पारीक ने किया

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ, उत्तर प्रदेश कार्यकारिणी बैठक संपन्न

रामेश्वरम इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट, लखनऊ में राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ उत्तर प्रदेश की प्रदेश कार्यकारिणी की बैठक 15 जुलाई, 2018 को संपन्न हुई। जिसमें पदाधिकारियों ने संगठन विस्तार व संगठन के वार्षिक कार्यक्रमों पर व्यापक विचार विमर्श किया। संगठन के अखिल भारतीय सह संगठन मंत्री ओमपाल सिंह ने कहा कि यह संगठन शिक्षा में गुणात्मक सुधार के साथ ही राष्ट्रीयता को बढ़ाने का संकल्प लेकर चलता है। संगठन से जुड़े हर कार्यकर्ता में सोच, समझ, समय, संपर्क, संवाद, संघर्ष और संबंध के कार्य सूत्रों को अपनाकर अलग पहचान बनाने के दायित्व को निभाना चाहिए। आज की शिक्षा व्यवस्था में गुणात्मक और राष्ट्रीयता की भावना ताकतवर नहीं हो पा रही है इसकी पहल संगठन से जुड़े सभी पदाधिकारी व कार्यकर्ताओं को करनी होगी। गाँव में प्राइमरी व इंटर कॉलेजों को संगठन गोद लें और उन्हें आदर्श रूप में विकसित करें तो संगठन की समाज में अलग पहचान बनेगी। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के उच्च शिक्षा संवर्ग के राष्ट्रीय प्रभारी महेंद्र कुमार ने कहा कि संगठन में पद लेना अलग बात है किंतु उनके दायित्त्व का पूर्ण जिम्मेदारी के साथ निर्वाह करना अलग है। संगठन में परिवर्तन करने का दायित्त्व कार्यकर्ताओं पर है। संगठन के जो वार्षिक गुरुवंदन, कर्तव्य बोध के कार्यक्रम निचले स्तर पर कार्यकर्ताओं की जानकारी में होना चाहिए। कार्यक्रम में राष्ट्रीय अतिरिक्त महामंत्री डॉ. निर्मला यादव ने भी विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रदेश अध्यक्ष डॉ. अनिल कुमार सिंह ने की व आभार महामंत्री ऋषिदेव त्रिपाठी ने किया।

गतिविधि

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ, उत्तराखण्ड का प्रदेश कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग आयोजित

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ उत्तराखण्ड का दो दिवसीय प्रदेश अभ्यास वर्ग के आयोजन की शृंखला में समाज व संगठन में शिक्षकों की भूमिका पर चर्चा की गई। साथ ही आगामी कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की गई।

सुमन नगर (धर्मपुर) स्थित गोवर्धन सरस्वती विद्या मंदिर इंटर कॉलेज में 27 जुलाई को आयोजित अभ्यास वर्ग का उद्घाटन महासंघ के राष्ट्रीय सह संगठन मंत्री ओमपाल सिंह ने किया। बतौर मुख्य अतिथि ओमपाल सिंह ने महासंघ को मजबूत बनाने के लिए अधिक से अधिक शिक्षकों को जोड़ने पर जोर दिया। साथ ही महासंघ के दर्शन, वैज्ञानिक भूमिका एवं समाज के लिए शिक्षकों की प्रेरणा के महत्त्व को उजागर किया। उन्होंने कहा कि मौजूदा शैक्षिक वातावरण को और अधिक बेहतर बनाने की जरूरत है। प्रदेश महामंत्री डॉ. अनिल नौटियाल ने महासंघ को शैक्षिक गतिविधियों पर आधारित संगठन बताया। साथ ही शिक्षकों की समस्याओं को लेकर सुझाव भी दिये। महासंघ में महिला संवर्ग की अध्यक्ष डॉ. रश्मि त्यागी रावत ने महिलाओं के सशक्तिकरण के साथ शिक्षकों के कर्त्तव्यों के निर्वहन पर जोर दिया।

अभ्यास वर्ग के द्वितीय व तृतीय सत्र में कार्यकर्ताओं की कार्य शैली, प्रकृति पर चर्चा की गई। साथ ही सेवा शर्तें, वेतनमान, विसंगतियाँ, सरकार का रवैये को लेकर संगठन की भूमिका को भी स्पष्ट किया गया। इस अवसर पर संगठन के अनेक कार्यकर्ता उपस्थित रहे।

AJKLTF Organised Teacher's Convention at Katra

A One Day State Convention of All Jammu Kashmir and Ladakh Teachers Federation under the aegis of Akhil Bharatiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh was held on 5 July, 2018 at Spiritual Growth Centre Katra (Reasi) under the Chairmanship of of Nirmal Kumar Choudhary, Chief Education Officer Reasi who was the Chief Guest, Prof Jagdish Prasad Singhal, All India President of Akhil Bharatiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh was chief speeker and the Sangathan Mantri Mahendra Kapoor. The Teachers, eminent Educationists, prominent citizens from across the State participated in the One Day Convention.

Addressing the Convention, Prof. Jagdish Prasad Singhal stressed for early redressal of issues of SSA teachers in the state who are on agitation for the last ten months. But the State Govt. did not resolved their issues till date. This adamant attitude on the part of the State Govt. put the teachers under depression which adversely affecting the teaching learning process. He assured that the Shaikshik Mahasangh took up the matter before the Central Govt. for early redressel of the issue of SSA teachers within some days.He appealed the Govt. to resolve this issue seriously.

In his address Sh Mahendra Kapoor Rashtriya Sangathan Mantri, Shaikshik Mahasangh, laid emphasis upon the teaching fraternity to work with great zeal and dedication to inculcate Indian values and culture among their students. It is only our culture and values, that have the solution to the present major problems before our country and society.

Nirmal Kumar Choudhary Chief Education Officer Reasi was the chief guest, said that the moral education declined in the present Education. It is the responsibility of the teachers to provide the moral education to the students to make our society and nation great in the world. Rattan Sharma State General Secretary welcomed the guests and participànts ,also highlighted the different activities of the Federation in the State for the welfare of teaching fraternity. Dev Raj Thakur State President thanked the Guests and all the participants.

AJKLTF Celebrated Guruvandan Karyakram at Chenani, Udhampur

All Jammu Kashmir and Ladakh Teachers Federation under the aegis of Akhil Bharatiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh celebrated Guruvandan karyakaram at Chenani which was attended by the teachers, educationists , prominent citizens.

"Shaikshik Mahasangh celebrate Guruvandan karyakaram every year all over the country on the occasions of Guru purnima to preserve , restore teacher's identity in the society. The programme started by lightening of traditional lamp (Deep) and offering flower garland to the pictures of Saraswati mata and Maharishi Ved Vyas ji. On this occasion Kartar Chand State secretary (Trainings) said that Shaikshik Mahasangh is the only largest organisation of the country which not only try its best to resolve teachers issues and other service conditions but also working for the cause of Students , Education, Society and Nation. Rattan Sharma State General who was the Chief spokesperson briefly elaborated the objective of the celebrations of Guruvandan karyakaram. Kartar Chand presented the vote of thanks. The programme concluded with the kalyan mantra .